षष्ठ अध्याय

यम और पितर

यम

स्वर्ग-नरक के अतिरिक्त मृतात्मा का पितर लोक में जाने का वर्णन भी मिलता है। इन पितरों का राजा यम है।ऐसा विश्वास किया जाता है कि मरने पर जीव यम के सम्मुख उपस्थित होता है वहां उस के द्वारा किए गए शुभाशुभ कर्मों का निर्णय होता है। अब यह यम कौन है, कहां रहता है ? इस निर्णय किये जाने में यम का क्या हाथ है ? इन सब प्रश्नों पर विचार किया जाएगा।

यम पद का अर्थ

निरुक्तकार यास्क के अनुसार यम शब्द का अर्थ है जो नियम में रखता है, वह यम है[१]। शब्दकल्पद्रुम में सब को नियम में रखने के कारण तथा जीवों को उन के कर्मानुसार फल देने के कारण वह यम कहलाता है[२]। वाचस्पत्यम् में यम शब्द परिवेषणे (व्याप्त करना) तथा उपरतौ यच्छति अर्थ में भी माना गया है[३]। पाणिनि के अनुसार भी यह यम शब्द 'यमोऽपरिवेषणे' से बनता है, जिस का अर्थ व्याप्त करना है[४]। प्रसिद्ध विद्वान् दाण्डेकर ने यम शब्द की व्युत्पत्ति√यम धातु से मान कर इस का नियन्त्रित अथवा रोकना अर्थ किया है[५]। निष्कर्ष रूप में यम पद का यहां नियामक अर्थ लेना ही सुसंगत है। मूलत: इस अर्थ को लक्ष्य में रख कर वैदिक साहित्य में यम के अनेक अर्थ देखे जा सकते हैं। प्रजा को पाप से रोकने के कारण राजा भी यम है। प्रकरण भेद से बहुत से स्थानों में एक पद के अनेक अर्थ हो जाते हैं। ऐसा संसार की सभी भाषाओं में पाया जाता है। इसी प्रकार यम शब्द के भी अनेक अर्थ हो जाते हैं। वैदिक साहित्य में प्रकरण के अनुसार

१- यम: यच्छतीति सत:। नि० १०.२६.

२- श० क० चतुर्थभाग, पृ०.१८.

३- वाचस्पत्यम्, षष्ठो भाग, पृ० ४७७३.

४- यम च परिवेषणे । पाणिनि,धातुपाठ पृ० ४५.

५- Dandekar, R.N.; B.C. Law Vol.,Part I. P.209

ही यम पद का अर्थ-भेद हो गया है ।

विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त यम शब्द

वैदिक साहित्य में यम शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है विभिन्न स्थानों पर उन में प्रयुक्त यम शब्द का अर्थ प्रकरण के अनुसार भिन्न-भिन्न है ।

यम शब्द युगल अर्थ में

ऋग्वेद में यहां यम तथा यमी सवाद है वहां यम शब्द का अर्थ युगल रूप में प्रयुक्त हुआ है क्योंकि यम-यमी की उत्पत्ति साथ-साथ हुई मानी गई है[१] । इस के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी यह यम शब्द युगल अर्थ में आया है । जैसे कि वसु जो कि प्रत्येक उषा के आगे-आगे आता है युगलभूत दिन-रात का प्रकाशित करने वाला माना गया है[२] । यहां दिन-रात का एकत्र वर्णन होने से यम युगल अर्थ में आया है । इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी यम पद युगल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[३] । अश्विनों की उत्पत्ति युगल रूप में ही है वे सहोत्पन्न हैं[४] । इसी प्रकार इन्द्राग्नी[५] तथा द्यावा-पृथिवी[६] यह शब्द इकट्ठे ही आए हैं ।

काल अर्थ में

ऋग्वेद में यम को विवस्वान् का पुत्र कहा गया है[७] । सूर्य से उत्पन्न

१- ऋ० १०.१०., अथर्व० १८.१.१-१६

२- ऋ० १०.८.४.

३- वही ३.३६.३, ५.५७.४.,१०.१३.२., १०.११७.६., अथर्व० १८.३.३८.

४- वही २.३६.२.

५- वही ६.५६.२.

६- वही ६.६८.३., १०.१०.६., अथर्व० १८.१.१०.

७- वही १०.१४.५.

होने के कारण यम का अर्थ काल है । सूर्य सिद्धान्त में सूर्य को काल का उत्पन्न करने वाला कहा भी है[1] । शब्द-कल्प द्रुम में अन्य अर्थों के साथ यम का एक अर्थ काल भी दिया गया है[2] । यद्यपि काल नित्य है तो भी क्षण-पलादि व्यवहार योग्य काल का उत्पादक सूर्य ही है[3] । यहां कहीं विवस्वान् का पुत्र होने से यम के लिए वैवस्वत शब्द प्रयुक्त हुआ है । वहां स्वामी दयानन्द के अर्थ को ग्रहण करने वाले प्रियरत्न आर्ष ने कहा है कि यहां भी वैवस्वत विशेषण हो वहां यम का अर्थ काल मानना उचित है[4] ।

आदित्य अर्थ में

ऋग्वेद में एक मन्त्र आया है जिस में यम पद का विवस्वान् का पुत्र तथा सूर्य दोनों अर्थ किए गए हैं । दूसरे अर्थ के अनुसार उत्तम पत्रों वाले वृक्ष की तरह सुन्दर स्थान में आदित्य रश्मियों के साथ गमन करता है[5] । यास्क ने भी यहां यम का अर्थ आदित्य किया है[6] । इस स्थल पर सायण को भी यही अर्थ अभिप्रेत है[7] । यजुर्वेद में एक मन्त्र के अनुसार यम का अर्थ सूर्य है[8] । इसी मन्त्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में की गई है । जिस के अनुसार यह तपने वाला सूर्य यम ही है । जो कि सब को नियन्त्रण में रखता है[9] । उपनिषदों में भी यम आदित्य अर्थ में प्रयुक्त

१- कालकृत् (सूर्य सिद्धान्त १२.१८) (२)- श० क० चतुर्थ भाग, पृ० १८.

३- राम गोपाल, वेद वाणी वेदाङ्क (१२) वर्ष १६, पृ० २६.

४- प्रियरत्न, यम-पितृ परिचय, पृ० ६.

५- ऋ० १०.१३५.१.

६- यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे - - - - देवैः संगच्छते यमो रश्मिरादित्यः । नि० १२.२६.

७- सायण ने इस मन्त्र की व्याख्या में यम का "यच्छतीति यमः आदित्यः" अर्थ किया है ।

८- मा० सं० ३७.११.

९- मा० श० ब्रा० १४.१.३.४.

हुआ है[१] ।

वायु अर्थ में

यजुर्वेद में यम शब्द वायु अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है[२] । शतपथ ब्राह्मण में इस की व्याख्या करते हुए चलते हुए वायु को ही यम कहा गया है[३] ।

अग्नि अर्थ में

यास्क ने यम का अर्थ अग्नि भी किया है[४] । यजुर्वेद के एक मन्त्र की व्याख्या में शतपथ ब्राह्मण में निर्ऋति के द्वारा यम-यमी से सलाह करके मृतक को स्वर्ग में पहुंचाए जाने का उल्लेख मिलता है ; क्योंकि यम अग्नि है और यमी पृथिवी है । इन्हीं दोनों के नियन्त्रण में सब वस्तुएं हैं[५] । गोपथ ब्राह्मण में भी यम को अग्नि कहा गया है[६] ।

ज्ञानेन्द्रियां अर्थ में

अथर्ववेद के एक मन्त्र[७] के भाष्य में दयानन्द जी ने यम शब्द को ज्ञानेन्द्रिय अर्थ में भी लिया है । यथा- पांच ज्ञानेन्द्रियां तथा एक मन मिल कर छः यम हैं । तथा एक जीवात्मा जो अकेला ही उत्पन्न होने वाला है उस जीवात्मा में ये छः मन

१- ई० उ० १६, बृ० उ० ५.१५.१.

२- मा० सं० ३८.६.

३- मा० श० ब्रा० १४.२.२.११.

४- अग्निरपि यम उच्यते। नि० १०.२०.

५- यजु० १२.६३., मा० श० ब्रा० ७.२.१.१०.

६- अग्निर्वै यमः । गो० ब्रा० २.४.८.

७- इदं सवितर्विजानीहि षड्यमा एक एकजः ।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ।।
अथर्ववेद १०.८.५.

सहित ज्ञानेन्द्रियां बन्धुत्व को चाहती हैं[१]। परन्तु यहां पर अन्य विद्वानों ने यम शब्द को ऋतु अर्थ में ही लिया है यथा छ: जोड़े जो कि दो-दो मास के छ: ऋतु हैं और एक वर्ष है[२]।

राजा अर्थ में

यम ही इस पृथिवी पर रहने वालों का प्रबन्धक है। पितरों ने इस लोक को इस के लिए बनाया है। यम क्षात्रिय (राजा) है और पितर (वैश्य) साधारण लोग हैं। पितरों की अनुमति से मृतक को अपने राज्य में स्थान देता है[३]। यम नियामक होने से ही राजा कहलाता है[४]।

यम कौन है

यम को यद्यपि वैदिक साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है तथापि अभी भी यह एक विवादास्पद विषय है कि यम है कौन ?

विवस्वान् का पुत्र

ऋग्वेद में यम को विवस्वान् (सूर्य) का पुत्र कहा गया है[५]। इसीलिए यम को वैवस्वत भी कहा जाता है[६]। त्वष्टा की पुत्री सरण्यू इस की माता है[७]।

१- दयानन्द भाष्य, अथर्व० १०.८.५

२- Six are the twins (the Seasons, consisting each of two months). Griffith, R.T.H.: Hymns of the Atharvaveda Eng. tr. 10.8.5.
शर्मा, श्री राम (हिन्दी अनुवाद) अथर्व० १०.८.५.

३- यजु० १२.४५., मा० श० ब्रा० ७.१.१.३-४.

४- यमराज पु० यमानां चतुर्दशानां राजा यम नियामक राजा। प्रेतानां राजनि धर्मराजे। वाचस्पत्यम् षष्ठो भाग: पृ० ४७७४.

५- विवस्वन्तं हुवे य पिता ते। ऋ० १०.१४.५.

६- ऋ० १०.१४.१., १०.५८.१.,१०.६०.१०, १०.१६४.२., अथर्व० ६.११६.२.

७- ऋ० १०.१७.१, अथर्व० १८.१.५.३.

वेद में पाये जाने वाले वार्तालाप में यमी यम को मर्त्य का पुत्र कहती है[१]। इस के साथ ही यम और यमी अपने को गन्धर्व और जलीय दिव्यांगना की सन्तान कहते हैं[२]। यहां गन्धर्व का अर्थ आदित्य ही है यही यम व यमी का उत्पादक है तथा यहां आदित्य की पत्नी अप्या है जिस का अभिप्राय यह हुआ कि सरण्यू का दूसरा नाम अप्या भी है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् विल्सन ने भी गन्धर्व को विवस्वान् का वाचक तथा अप्या योषा को उस की पत्नी सरण्यू के लिए प्रयुक्त हुआ माना है[३]। प्रियरत्न जी ने कहा है कि वैदिक मर्यादा के अनुसार कामवश पुरुष-स्त्री को गन्धर्व और योषा कहते हैं[४]। ऐतरेय ब्राह्मण में भी स्त्री-काम पुरुष को गन्धर्व कहा गया है[५] व क्योंकि गन्धर्व लोग स्त्री को चाहने वाले हैं[६]। विवस्वान् जिसे कि यम का पिता कहा गया है, कौन है ? यजुर्वेद में विवस्वान् सूर्यार्थ में आया है[७]। यम जिसे कि काल कहा गया है[८] उस का पिता सूर्य होना सुसंगत है क्योंकि काल का उत्पादक सूर्य ही है[९]। इस बात की पुष्टि ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के इस विवरण से होती है कि त्वष्टा अपनी पुत्री का विवाह रचता है। इस कारण यह सारा

१- उशन्ति घाते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य। ऋ० १०.१०.३., अथर्व० १८.१.

२- गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥

ऋ० १०.१०.४., अथर्व० १८.१.४.

३- Wilson, H.H. Rgveda Samhitā, Vol.VII. P.22 Cp. Max Muller's, Lectures, 2nd series P.483.

४- प्रियरत्न, यम-पितृ परिचय, पृ० ६६.

५- स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः। ऐ० ब्रा० ५.१.

६- गन्धर्वाः सर्वेऽपि स्त्रीलम्पटा। सायण भाष्य, ऐ० ब्रा० ५.१.

७- विवस्वन्नादित्यैष ते। यजु० ८.५.

८- दक्षिण दिक्पाल पितृपति, काल, अन्तक, वैवस्वत, श० क० चतुर्थ भाग पृ० १८.

९- कालकृत्, सूर्यसिद्धान्त १२.१८.

भुवन इकट्ठा होता है तथा व्याही जाती हुई यम की जननी एवं विवस्वान् की पत्नी नष्ट हो जाती है[१]। यास्काचार्य ने ऋग्वेद में आए इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है कि यम की माता जो कि महान् विवस्वान् की पत्नी है व्याही जाती हुई नष्ट हो गई तथा आगे स्पष्टीकरण किया है कि रात्रि जो कि सूर्य की जाया है सूर्योदय पर छिप जाती है[२]। इस प्रकार विवस्वान् का अर्थ आदित्य ही है तथा यम की माता सरण्यू ही है। विवस्वान् का पुत्र होने के कारण ही यम को वैवस्वत इस नाम से भी कहा गया है। सर मौनियर विलियम्स ने भी उपर्युक्त अभिमत को अपने शब्द कोष में प्रतिपादित किया है[३]। पी० वी० काणे ने भी यम को विवस्वान् (सूर्य) का पुत्र माना है[४]। यद्यपि यम को विवस्वान् का पुत्र कहा गया है तथापि उन में स्थान-भेद है। यम को सूर्य से 'पर' तथा विवस्वान् को अवर माना गया है[५]। मैक्डोनल आदि कुछ विद्वानों ने यहां 'पर' तथा 'अवर' का अर्थ श्रेष्ठ तथा नीच कर दिया है[६]। जिस के अनुसार यम की सूर्य की अपेक्षा श्रेष्ठता दिखाई देती है परन्तु यहां पर स्थान-भेद मानना ही युक्तिसंगत है। क्योंकि यम की स्थिति तीसरे द्युलोक में मानी गई है[७]। जिस के परे कुछ भी

१- त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति। यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ।। ऋ० १०.१७.१., अथर्व० १८.१.५३.

२- यमस्य माता पर्युह्यमाना महतो जाया विवस्वतो ननाश, रात्रिरादित्यस्यादित्योदयेऽन्तर्धीयते। नि० १२.११.

३- William, Monier: Sanskrit English Dictionary, P.846.

४- Kane P.V.: H.D. Vol. IV P.159

५- यमः परोऽवरो विवस्वान् - - - - - । अथर्व० १८.२.३२.

६- Macdonell A.A.: V.M. P.172

७- तृतीया ह द्यौरिति यस्यां पितर आसते। अथर्व० १८.२.४८.

दिखाई नहीं देता[१]। कुछ विद्वानों ने उपर्युक्त दोनों अर्थों को स्वीकार करते हुए उन में स्थान की दृष्टि से ही तुलना किया जाना हीयुक्तिसंगत माना है[२]।

मृतकों का राजा

यम मरने वालों में सर्वप्रथम था तथा वह सब से पहले मर कर इस लोक से दूसरे लोक को गया। इसी के नाम से उस स्थान का नाम यम लोक पड़ा[३]। सातवलेकर जी ने ऐसा माना है कि जो मनुष्य सर्वप्रथम मरता है वह इस रूप में यम बनता है[४]।हाप्किन्स के अनुसार यम मर्त्यों में सर्वप्रथम मरने वाला था। यहां मर्त्य शब्द से मनुष्य ही लिए जा सकते हैं यद्यपि बाद में देवों को भी मर्त्य कहा गया है[५]। सर्वप्रथम उस ने उस मार्ग को ढूंढ निकाला जिसे कि बाद में जाने वाले मृतकों ने अपनाया तथा उस का अनुसरण करते हुए वे भी उस लोक में पहुंच गये[६]। उसे लोगों को एकत्र करने वाला कहा गया है तथा एक राजा के रूप में हवियों द्वारा उस की पूजा किये जाने का विधान भी मिलता है[७]। जन्दावस्ता में भी यम का ऐसा ही वर्णन आया है। वहां इसे यिम कहा गया है। उस में यम की कथा इस प्रकार है कि अहुरमजदा (पारसियों का परमेश्वर) ने यिम को एक सुनहरी तलवार और जड़ाऊ अंकुश दिया जो कि यिम के राजा होने का चिन्ह है। एक स्थल पर

१- यम: परोऽवरो विवस्वान् तत: परं नाति पश्यामि किंचन। अथर्व० १८.२.३२.

२- सातवलेकर, अथर्ववेद १८ वां काण्ड सुबोध भाष्य अथर्व० १८.२.३२. श्री मंगलदेव, यम और पितर, पृ० ८७.

३- यो ममार प्रथमो मर्त्यानां य: प्रेयाय प्रथमो लोकमेतत्। अथर्व० १८.३.१३.

४- सातवलेकर, अथर्ववेद १८ वां काण्ड, सुबोध भाष्य पृ० २८६.

५- Hopkins, Religions of India P.128

६- यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ। यत्रा न: पूर्वे पितर: परेयुरेना जज्ञाना: पथ्या अनुस्वा:।। ऋ० १०.१०.४., अथर्व० १८.१.५०.

७- वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत। अथर्व० १८.३.१३.

यिम का विशेषण दायेता आया है जिस का अर्थ है राजा, इसे वहां पशुओं और मनुष्यों का इकट्ठा करने वाला कहा गया है[1]। अतएव वेद में यम को जो 'सङ्गमनं जनानां' कहा गया है। इस की यिम के साथ ठीक संगति बैठती है जिसे कि दायेता कहा गया है। ऋग्वेद में यम को वरुण के साथ राज्य करते हुए माना गया है इसीलिए जब मृतात्मा स्वर्ग में पहुंचती है तो वहां इन दोनों राजाओं के दर्शन होते हैं[2]। सोम से प्रार्थना की गई है कि जहां द्युलोक में राजा यम राज्य करते हैं तथा जहां नव स्वलिल प्रवाहित होते रहते हैं वहां मुझे अमर कर दो[3]। कुछ अन्य स्थलों पर भी यम का एक राजा के रूप में उल्लेख आया है[4]। तैत्तिरीय संहिता में स्पष्टतया कहा गया है कि यम समस्त पृथिवी के मर्त्यों (मनुष्यों) का शासक है[5]। इसी संहिता में एक अन्य स्थल पर ऐसा भी कहा गया है कि यम अग्नि है ये पृथिवी और वेदि यमी है। जब कोई यजमान वेदि पर औषधियां फैलाता है तो यम से ऋण लेता है। यदि वह यजमान बिना उन्हें जलाए इस लोक से चल देता है तो यमदूत उस के गले में बन्धन डाल कर दूसरे लोक में ले जाते हैं[6]।

मृत्यु का देवता

यद्यपि यम को मृतकों का राजा माना गया है परन्तु उसे मृत्यु के देवता के रूप में भी स्वीकार किया गया है। साधारणतया यही धारणा

१- राम गोपाल द्वारा उद्धृत, 'वेदों में यम का स्वरूप' वेदवाणी, वेदाङ्क वर्ष १६, अङ्क १, पृ० २६.

२- ऋ० १०.१४.७.

३- यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः। यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं।
ऋ० ६.११३.८.

४- ऋ० १०.१४.१., १०.१६.६.

५- यावती वै पृथिवी तस्यै यम आधिपत्यं परीयाय यो वै यमं देवय उपैति।
तै० सं० ५.२.३.१.

६- तै० सं० ३.३.८.३-४, तु० कौ० ४.१४.१७., तै० आ० २.३.

प्रचलित है कि यम मृत्यु का देवता है। ऋग्वेद में मरुत के स्तोताओं का यम-मार्ग से भिन्न मार्ग के द्वारा जाने का उल्लेख मिलता है[1]। कुछ स्थलों पर यम को मृत्यु के साथ समीकृत किया गया है[2]। औषधियों से प्रार्थना की गई है कि वे यम और वरुण के पाशों से मुक्त करावें[3]। इस प्रकार यम के यह पाश वरुण के पाशों के समानान्तर दृष्टिगोचर होते हैं[4]। इस प्रकार की प्रवृत्तियों तथा दूतों के कारण यम ऋग्वेद में एक भयानक वस्तु के रूप में रहे होंगे किन्तु अथर्ववेद तथा बाद के पुराकथा शास्त्र में यम का यह भय मृत्यु के साथ अधिक घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होने के कारण अन्त में इन्हें मृत्यु का देवता समझा जाने लगा[5]। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार मृत्यु के पास पाश और स्थाणु हैं जिन के द्वारा वह पापी मनुष्यों को पकड़ता है। परन्तु पुण्यवानों के लिए वह कल्याणकारी ही है[6]। धीरे-धीरे मृत्यु के पाश और स्थाणु का सम्बन्ध यम के साथ जुड़ गया और उस का रूप भयानक हो गया[7]। इस के अतिरिक्त यम के अन्य नाम अन्तक मृत्यु[8], निऋति[9] भी मिलते हैं। अथर्ववेद में मृत्यु को मनुष्यों का और यम को पितरों

१- ऋ० १.३८.५.

२- ऋ० १०.१६५.४., तु० की० मै० सं० २.५.६., अथर्व० ६.२८.३., ६३.१.

३- ऋ० १०.६७.१६., मा० सं० १२.६०., सं० १३.६१., शौ० सं० ६.६६.२., ७.१२१.२., पै० सं० १६.१२.५.

४- तु० की० Bloomfield, American Journal of Philology 11, P. 354-5

५- Macdonell A.A.: V.M. P.172

६- ऐ० ब्रा० १२.३.

७- कैलाशचन्द्र, पितृपूजा, पृष्ठ २१५.

८- वा० सं० ३६.१३., मै० सं० ४.४.२., क० उ० १.१.२६, १.३.१६, २.३.१८.

९- अथर्व० ६.२६.२.

का राजा कहा गया है[१] । शतपथ ब्राह्मण में एगलिंग ने उस का अनुवाद करते हुए यम को मृत्यु तथा नाश का देवता माना है[२] । तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि सत्यवादी तथा मिथ्यवादी व्यक्तियों को यम के सम्मुख पृथक्-पृथक् किया जाता है[३] । किन्तु इस पृथकता में यम का क्या हाथ है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता वह केवल एक राजा ही है । परन्तु परवर्ती साहित्य में पौराणिक काल में वह मृतात्माओं के लिए न्यायधीश का काम भी करने लगा था । उपनिषदों में आ कर यम का स्वरूप कुछ परिवर्तित हुआ प्रतीत होता है । कठोपनिषद् के अनुसार स्वर्गलोक में यम (मृत्यु) का कुछ भी भय नहीं है तथा न ही वहां उस की कोई सत्ता है[४] । इसी उपनिषद् में ऐसा भी कहा गया है कि यम स्वर्ग के साधन-भूत अग्नि का ज्ञाता है[५] । अतएव यद्यपि यम को मृतकों का राजा तथा मृत्यु के साथ समीकृत किया गया है तो भी वह कल्याणकारी रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है । परन्तु धीरे-धीरे उस का स्वरूप बदलता गया । पुराणकाल में आ कर तो उसे नरक लोक का राजा मान लिया गया तथा एक भयंकर सत्ता के रूप में माना जाने लगा ।

<u>यम के स्वरूप के विषय में विभिन्न मत</u>

पूर्ववर्णित तथ्यों के आधार पर यही प्रतीत होता है कि यम मरने वालों में प्रथम था । वह सर्वप्रथम मर कर दूसरे लोक को गया तथा उसी के नाम

१- मृत्यु प्रजानामधिपति:समावतु । अथर्व० ५.२४.१३.
यम: पितृणामधिपति: समावतु । अथर्व० ५.२४.१४.

२- Eggeling's translation Śatapatha Brahmana 2.3.2.1-2.

३- तै० आ० ६.५.१३.

४- क० उ० १.१.१२.

५- क० उ० १.१.१३.

से वहां यम लोक नाम पड़ा । इस यम का स्वरूप क्या है इस के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है । विद्वानों के द्वारा यम की अग्नि, सूर्य तथा चांद रूप में व्याख्या की गई है ।

यम-अग्नि प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् कुह्न[१] (Kuhn) और वैर्गेन[२] के अनुसार यम अग्नि है । विशेषतया विद्युताग्नि तथा यमी बादलों की गर्जन की ध्वनि है । बर्थ (Barth) ने भी यम के विषय में कहा है कि अग्नि अथवा सूर्य ही यम है[३] ।

यम-सूर्य प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर ने यम को अस्त होता हुआ सूर्य मान कर उसे मृतकों का राजा कहा है[४] । वेबर के शब्दों में भी ढलता हुआ दिन ही यम है तथा यमी रात्रि है । जिस के अन्धकार को यम का शोक माना जा सकता है[५] । ऐह्नी (Ehni) ने यम को अस्त होता सूर्य कहा है । इस का प्रमाण इस प्रकार दिया है कि यह सूर्य (जिस की किरणें सर्वत्र फैलती हैं) का पुत्र है । यम दूरवर्ती निर्जन स्थान को जाने के लिए सूर्य के पथ का अनुसरण करता है । सूर्य का यह पथ मानव जीवन के पथ का चिन्ह है और यही विचार मनुष्य की मृत्यु के लिए तथा सूर्यास्त के लिए वेद में प्रयुक्त किए गये हैं । सूर्य एक पक्षी है तथा पक्षियों को ही यम की भान्ति अपने दूत-रूप में रखता है । विवस्वत और यम जो कि परस्पर पिता-पुत्र रूप में सम्बन्धित हैं क्रमश: प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सूर्य हैं।[६]

१- Quoted by Macdonell, A.A. V.M., P.174

२- Bergaigne's Vedic Religion, translated by Paranjpe ,V.G.P.91

३- Quoted by Keith, R.P.V.U., Part II, P.408

४- Maxmuller,Lectures on the science of language 2 P.634-37

५- Quoted by Keith, A.B.R.P.V.U. Part II P.408

६- Quoted by Carnoy, A.J., JAOS,36 P.37

प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् राधाकृष्णन् जी ने भी यम को अस्त होता हुआ सूर्य माना है[१]। मैकडोनल ने यम को उदय होता हुआ सूर्य कहा है[२]। कीथ के अनुसार यम एक धुंधलाया हुआ देवता है[३]। प्रसिद्ध आलोचक दाण्डेकर ने इन सभी विद्वानों के तथ्यों में किञ्चित मतभेद होने से यह व्यक्त किया है कि इस प्रकार यम का सौर सम्बन्धी चरित्र स्पष्टतया उभर नहीं सका है[४]। ब्लूमफील्ड ने यम का सौर चरित्र उस के दो कुत्तों को आधार बना कर व्यक्त करने का प्रयास किया है। जिस के अनुसार यम के ये दोनों कुत्ते दिन और रात अथवा सूर्य और चांद है[५]।

यम-चन्द्र हिलेब्रान्ट एवं आयंगर सदृश विद्वान् यम को सूर्य-पुत्र चन्द्र मानते हैं। इस की निष्पत्ति इस तरह की जाती है कि सूर्य देवता जिसे कि विवस्वान् कहा गया है वैदिक पुराकथाशास्त्र और विधि-विधानों में यम और विवस्वान् के मध्य परस्पर विरोध प्रदर्शित करता है[६]। हिलेब्रान्ट ने स्पष्ट रूप से यह व्यक्त किया है कि यम एक सूर्य देवता नहीं हो सकता। एह्नी ने इन दोनों के मध्य जो तुलनात्मक व्याख्या की है वह बिल्कुल अस्वाभाविक और अविचारणीय है तथा एह्नी ने यम को जो एक देवता माना है यह भी युक्तिसंगत नहीं क्योंकि वैदिक सन्दर्भों में उसे एक मृत्य माना गया है। हिलेब्रान्ट के अनुसार यम के व्यक्तित्व की दो विशेषताएं कि यम सूर्य की सन्तान है तथा वह मरता है इन दोनों में

१- Radha Krishnan, Indian Philosophy, Vol. I. P.85

२- Macdonell, A.A.; V.M. P.43

३- Keith, A.B.; RPVU, Part II (HOS Vol.32) P.408

४- Dandekar, R.N.; B.C.Law, Vol., Part I "Yama in the Veda" P.197

५- Bloomfield, JAOS 15, 1893, P.163-72.

६- Quoted by Dandekar, R.N.; B.C. Law Vol.I. Part I P.197

तभी ठीक संगति बैठ सकती है यदि उसे चन्द्र देव के रूप में मान लिया जाए। हिलेब्रान्ट के विचारों को स्वीकार करते हुए आयंगर ने भी यम को चन्द्र माना है जो कि सूर्य से प्रकाश पाता है तथा उस के साथ यमी को चन्द्र की पत्नी रोहिणी कहा है[२]। चन्द्र सूर्य से तेज और प्रकाश प्राप्त करता है अत: वह सूर्य-पुत्र हुआ। चन्द्रमा को जैसे कि षोडश कला युक्त माना गया है, उस की कलाएं क्षीण होती रहती हैं। द्वितीय को पूर्णिमा का यह चांद रेखा-मात्र रह जाता है। चन्द्रमा घटता है बढ़ता है जो कि काव्यात्मक व आलंकारिक रूप से चन्द्रमा के जन्म तथा मृत्यु को प्रदर्शित करता है। इन तथ्यों को हिलेब्रान्ट ने वैदिक सन्दर्भों के आधार पर सुलझाने का प्रयत्न किया है। इस की पुष्टि में ऐसे कई वैदिक मन्त्रों को लिया है जिनमें कि चन्द्र को सूर्य-पुत्र कहा है[३]। तथा उस की मृत्यु एवं जन्म के विषय में उल्लेख आया है[४]। इस के अतिरिक्त अपने सिद्धान्त के पक्ष में ब्रिन्टन (Brinton) ग्रेवनर (Gravner), क्रुक (Crooke), फ्रेजर (Frazor) ऐहरेनरिख (Ehrenreich), हार्टलैंड (Hartland) तथा अन्य विद्वानों के लेखों से मनोविज्ञान सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रमाणों को प्रस्तुत किया है[५]। चन्द्र के विकास और ह्रास से प्राचीनकाल के लोग पुनर्जन्म की कल्पना करते थे और चन्द्र को मृत पितरों का अधिपति माना जाता था। यम को यज्ञ में जो भाग मिलता है हिलेब्रान्ट के अनुसार यम को वह भाग चन्द्र-देव के आधार पर ही मिलता है। चन्द्र को यज्ञ का दूत और यज्ञ-हवि को देवताओं में वितरण करने वाला कहा गया है[६]

२- Quoted by Dandekar, R.N.;B.C. Law Vol. Part I P.197

३- ऋ० १. १.अथर्व० ८.२८.१४.

४- ऋ० १.१६४.४., १०.५५.५., ८५.१९.

५- Quoted by Dandekar R.N.B.C. Law Vol. Part I. P 197

६- ऋ० १.१०५.४.

इसे स्वीकार करते हुए सोम और बृहस्पति भी चन्द्रमा का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। हिलेब्रान्ट जो वैदिक सन्दर्भ उद्धृत करते हैं उन के द्वारा उन्होंने यही दिखाने का प्रयास किया है कि इन का यज्ञ के साथ निकटतम सम्बन्ध है तथा ये सभी कर्मकाण्डीय प्रीत यम के लिए ही परिवर्तित हैं क्योंकि ये तीनों देवता एक ही दिव्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं[१]। इस के अतिरिक्त अवेस्ता में यिमा जो कि यम का ही प्रतिरूप है वह चन्द्र देव के रूप को ही व्यक्त करता है। हिलेब्रान्ट ने यही निष्कर्ष निकाला है कि यम भारत ईरानी अथवा आरम्भिक काल का चन्द्र देव ही था तथा वेद के विशेष सन्दर्भों में हम यम के प्राचीन वैभव को एक चन्द्र देवता के रूप में खोज सकते हैं। जैमिनिय ब्राह्मण में कहा गया है कि चन्द्रमा में जो अन्धकार सा प्रतीत होता है वह शशक की छलांग है[२]। इसी शशक को यम का तद्रूप बताया गया है। शशक ही के सम्बन्ध से चन्द्रमा उत्तरकाल में शशी कहलाया है[३]।

हिलेब्रान्ट के मत को स्वीकार करते हुए कुछ विद्वानों ने यम का निवास-स्थान स्वर्ग बतलाया है तथा यह स्वर्ग चन्द्र में ही स्थित माना है। चन्द्र का जो क्षय एवं वृद्धि है, उस का सम्बन्ध वह मृतात्मा के वहां जाने तथा लौटने से जोड़ते हैं। इसी चन्द्र में रहते हुए आत्मा अपने पुण्य कर्मों का फल भोगता है तदनन्तर पुण्यों के क्षीण हो जाने पर पुन: इस पृथिवी पर जीवन धारण करता है। यही चन्द्र पुण्यशाली मृतकों का निवास स्थल है यहां का राजा यम है[४]। उपर्युक्त विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किये गए सिद्धान्त यम को एक प्राकृतिक दृश्यमान पदार्थ के रूप में प्रदर्शित करते हुए परस्पर एक दूसरे का खण्डन करते हैं। अत: ये

१- ऋ० ६.२.१०.

२- जै० ब्रा० १.२८.

३- Keith, A.B., RPVU(HOS,31) Part I. P.122

४- अवनीन्द्र कुमार, 'यम-यमी संवाद,' विश्वज्योति 'वेद विशेषांक' भाग १, अप्रैल-मई १९७२, पृ० ६२.

सिद्धान्त यम का यथार्थ चरित्र प्रकट नहीं कर पाते । हिलेब्रान्ट ने स्पष्टतया यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि यम एक सूर्यदेव नहीं हो सकते । उन्होंने ऐहनी आदि विद्वानों के मत का खण्डन किया है परन्तु हिलेब्रान्ट के द्वारा वर्णित यम के एक चन्द्र रूप में मानना भी युक्तिसंगत नहीं है । प्रसिद्ध आलोचक दाण्डेकर के अनुसार भी यम की मृत्यु को प्राकृतिक दृश्यमान रूप का आधार मान कर चांद के रूप में दर्शाना कदापि सन्तोषजनक नहीं है[१] । वेद में कहीं भी यम का चन्द्र की भान्ति मृत्यु के पश्चात् जन्म लेना तथा निश्चित समय पर मृत्यु को प्राप्त होना वर्णित नहीं है । उसे केवल मर्त्यों में सर्वप्रथम मरने वाला कहा गया है[२] । हिलेब्रान्ट ने यम को जो चन्द्र मान कर उसे यज्ञ-दूत कहा है उसे भी युक्तिसंगत नहीं माना जा सकता । यम प्रथम यज्ञकर्ता है उस ने स्वयं यज्ञ में बलि दे दी तथा सोम और बृहस्पति जिन्हें कि चांद का प्रतिरूप मान कर यज्ञ से सम्बन्धित माना है यह सब ऐसी धारणाएं हैं ; जिन्हें कि स्वीकार नहीं किया जा सकता । यम जो कि अवेस्ता के यिमों से मिलता जुलता है उस के चरित्र को सूर्य अथवा चांद के रूप में नहीं दर्शाया जा सकता क्योंकि यिमों का व्यक्तित्व एक मानवीय सत्ता के रूप में वर्णित है । इस के अतिरिक्त वैदिक साहित्य में कहीं भी यम की सूर्य या चांद के रूप में व्याख्या नहीं की गई है और न ही किसी अन्य दृश्यमान पदार्थ के रूप में वर्णित किया गया है । वहां इन सब से अलग ही ऐसा यम वर्णित है जिस की स्तुति की गई है । तथा यम की सूर्य और चांद से पृथकता दृष्टिगोचर होती है[३] । अत: इन सब धारणाओं को सम्मुख रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यम किसी प्राकृतिक दृश्यमान चरित्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता ।

१- Dandekar, R.N. B.C.Law Vol. Part I P.198

२- अथर्व० १८.३.१३.

३- ऋ० १०.६४.३., १०.६२.११.

मानव रूप में रॉथ तथा कुछ अन्य विद्वान् भी यम का दिव्य स्वरूप मानने को तैयार नहीं है[१]। हाप्किन्स भी रॉथ के मत को स्वीकार करते हुए यम के व्यक्तित्व तथा कार्य के विषय में विस्तृत जानकारी ढूंढने का प्रयास करते हैं। यम प्रथम मनुष्य है जो कि यमी के साथ मनुष्य जाति का पूर्वज है। वह प्रथम यज्ञकर्ता तथा पृथिवी का शासक है। प्रथम उत्पन्न हो कर सर्वप्रथम मरना तथा दूसरे मृतकों के लिए मार्ग ढूंढना, मृतकों के लिए एक बसती का निर्माण करना आदि निस्संदेह पितृपूजा के आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है। इस पितृपूजा का वेद में प्रथम वर्णन मिलता है[२]। यम की अवेस्ता के यिमा से तुलना करने पर यह सभी विचार पूर्णतया उस से मेल खाते हैं। ओल्डनवर्ग (Oldenberg) और शेरमैन (Scherman) भी बहु तथा किञ्चित रूप में इसी विचार से सहमत हैं। ओल्डनवर्ग इस विचारधारा को मान्यता देते हैं कि यम का वास्तविक चरित्र उस के प्रथम यज्ञकर्ता की अपेक्षा शासक के रूप में अधिक महत्वशाली है। यम यिमा की भान्ति स्वर्णयुग का राजा था। वे मनुष्य जो कि यहां इस पृथिवी पर उस के साथ रहते थे, मरणोपरान्त उसी के साथ दूसरे लोक में चले गए तथा वह यम वहां उन्हीं मृतकों का राजा बना[३]। शेरमैन के अनुसार यम वास्तव में एक मनुष्य था जिसे कि सूर्य देव के साथ समीकृत नहीं किया जा सकता। यम पहले एक पार्थिव राज्यसत्ता का शासक था तथा बाद में भयंकर नरकों का भयानक राजा बन गया[४]। इन प्राकृतिक सिद्धान्तों की मानवीय सिद्धान्तों के साथ तुलना करते हुए हम यम की ठीक व्याख्या को यम पुराकथा में देख सकते हैं।

१- Quoted by Dandekar, R.N.:B.C.Law Vol. Part I. P.199

२- Hopkins, Religions of India, P.134.

३- Quoted by Dandekar, R.N.:B.C. Law Vol. Part I. P.198

४- Quoted by Dandekar, R.N.:B.C. Law Vol. Part I, P.200
Cp. Hopkins, The Religions of India, P.134-35.

आत्म समर्पण करना   यम को जो मर्त्य कहा गया है तथा सर्वप्रथम उस की मृत्यु हुई यह इसलिए नहीं कि उस का जन्म भी सर्वप्रथम ही हुआ था बल्कि इस लिए कि उस ने मनुष्य की उत्पत्ति के लिए आवश्यक मानते हुए अपनी आहुति दे दी। इस की पुष्टि ऋग्वेद के एक मन्त्र से होती है जिस में यम ने अमरता का बलिदान किया और प्रजा का पालन किया[1]। देवताओं ने यह यज्ञ जीवों की रक्षा के लिए तथा मानव जाति की उत्पत्ति के लिए किया। इसी में यम ने अपने शरीर की यज्ञ-सामग्री की भान्ति आहुति दी। इसी मन्त्र का उत्तरार्ध यह व्यक्त करता है कि यम जिसे प्रथम यज्ञकर्ता कहते हैं स्वयं बृहस्पति है जो कि मुख्य यज्ञ होता तथा यज्ञकर्ता है। यहां यम भी देवताओं में से एक देवता प्रतीत होता है जिस ने कि अपनी अमरता का त्याग किया। परन्तु यम को फिर भी एक देवता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसने अपनी अमरता का त्याग कर दिया तथा न ही उसे मनुष्य रूप में माना जा सकता है क्योंकि उसने जीवों की रक्षा के लिए स्वयं बलिदान दिया। सम्भवत: यह बात उस पुरुष सूक्त के आधार पर कह दी गई हो जिसमें कहा गया है कि जो सब से प्रथम उत्पन्न हुए उस यज्ञीय पशु रूप को देव साध्य तथा ऋषियों ने यज्ञ में आहुति रूप में दिया[2]। यह पुरुष सहस्र शिर, अनन्त चक्षु तथा अनन्त चरणों वाले हैं[3]। इस प्रकार इस पुरुष का चरित्र उसे दूसरे पुरुषों से अलग कर देता है। यम ने सत्ता के प्रारम्भ में अपनी आहुति दी इसीलिए उसे प्रथम मर्त्य माना जाता है। यम ने जो अपना शरीर यज्ञकुण्ड में अर्पण कर दिया इस के आधार पर कुछ विद्वानों का मत है कि वैदिक आर्यों के

१- देवेभ्य: कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वन्त ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत्॥ ऋ० १०.१३.४.

२- तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रत:।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥ ऋ० १०.९०.७.

३- ऋ० १०.९०.१.

यज्ञसंस्था के प्रारम्भ में यज्ञकर्ता स्वयं अपनी आहुति देता था। आत्म बलिदान की इसी कल्पना से यज्ञ संस्था का प्रारम्भ हुआ। प्रजा तथा देवों के कल्याण के लिए आत्मसमर्पण करने वाला यम एक आद्यकर्ता माना जाता है। आगे चल कर यज्ञ में आत्मबलिदान के स्थान पर यज्ञीय पशु का हवन करने की प्रथा प्रचलित हुई[१]।

सभी उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यम सर्वप्रथम मर कर दूसरे लोक को गया तथा वहां जा कर पितरों का राजा कहलाया जो कि उस के पश्चात् उस लोक में गए। मैकडौनल के अनुसार यम विभिन्न जातियों में मिलने वाला पुराकथा-शास्त्रीय रूप है जो कि मृतात्माओं का प्रधान है। अतएव यम मानव जाति के प्रथम पौराणिक पिता तथा मरने वालों में प्रथम था[२]। ब्लूमफील्ड ने भी यम के विषय में कहा है कि यम प्रथम मर्त्य राजा है, जिसने मर कर मनुष्य जाति के लिए स्वर्ग को पाया तथा वहां पवित्रात्माओं के साथ आनन्द से रहता है[३]।

वस्तुत: यम शब्द की व्युत्पत्ति यम धातु से नियन्त्रित करना अर्थ में मान कर यह कहा जा सकता है कि यम एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य के अपने कर्मों के आधार पर उस के आगामी जन्म तथा फल का नियन्त्रण करती है तथा व्यवस्था को भंग नहीं होने देती। सब का नियमन करने के कारण ही वह यम है[४]।

यमलोक व यमराज्य

ऋग्वेद में यम का ऐसा सदन है जो कि देवताओं द्वारा निर्मित है तथा वहां पर वीणा की झंकारों के साथ स्तुतिरूपी वाणी यम की प्रीति के

१- शास्त्री, सिद्धेश्वर : भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश पृ० ६७५.

२- Macdonell, V.M. P.173

३- Bloomfield, Religion of the Veda, P. 149

४- सर्वस्य संयमनाद्यम: । शा० भा०, ई० उ० १६.

लिए उच्चरित की जाती है[1] । यदि कोई ऋणी इस लोक में बिना अपना ऋण चुकाए मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो यम लोक में भी वह ऋण उसे चुकाना पड़ता है तथा वहां पर भी उत्तमर्ण (ऋण देने वाला) ब्याज आदि से ऋण को बढ़ाता हुआ जा पहुंचता है[2] । यमलोक निकृष्ट स्थान नहीं । क्योंकि वहां घोर कर्म करने वाले पापियों को स्थान नहीं मिलता । उन के लिए यमलोक से दूर पापलोक स्थित है[3] । जितना मनुष्य इस लोक में कमाता है उतना ही धन-आदि मरने के अनन्तर यमलोक में उसे प्राप्त होता है तथा इसी मन्त्र में आया है कि स्त्रियां भी मरने के उपरान्त पति के साथ यमलोक में जाती हैं[4] । वशा गौ दान करने वाले को यमराज्य में सब प्रकार का सुख मिलता है[5] । मृत पुरुष को जो कि यमलोक में पहुंच गया है उसे वस्त्र देने के पश्चात् उन वस्त्रों को पहन कर यम राज्य में विचरण करने के लिए कहा गया है[6] । इसी स्थल पर यह भी कहा गया है कि बिना यमराजा की अनुमति के यमराज्य में मृत पुरुष को कुछ नहीं दिया जा सकता । अत: तिलमिश्रित धानादि देने के लिए यम से अनुमति मांगी गई है[7] । यह

१- ऋ० १०.१३५.७.

२- उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत किल्विषाणि यदक्षावृत्तमनुदत्तं न एतत् ।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधि रज्जुरायात् ।। शौ०सं०६.११८.२.,
पै०सं०१६.५०.४.

३- ब्रह्मस्ये दव्यहन्य आ मूलादनु संदह/यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावत: ।
अथर्व० १२.११.२-३.,१२.५.६३.६४.

४- यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ।। शौ०सं०१२.३.१.,
पै० सं० १७.३६.१.

५- सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषी दुहे । शौ० सं० २.४.३६, पै० सं० १७.१६.६

६- अथर्व० १८.४.३१.

७- वही १८.४.४३.

धान तथा तिल यमलोक में जा कर गौ तथा बछड़े के रूप में परिणत हो जाते हैं। इन धानों की बनी हुई गाय पर ही वह मृत पुरुष आश्रित हो कर रहता है[1]। इस यमलोक में ही यम मृतकों को ले जा कर रखता है। इस का स्पष्टीकरण निम्न मन्त्र से हो जाता है जिस में कहा गया है कि इस मृत पुरुष के लिए यह स्थान है। यमलोक में जा कर वह यम का ही हो जाता है तथा उस आगुन्तक को भी अन्य प्रजाजन की तरह यम के धन का भाग मिलता है[2]। संहिताओं में यहां पुण्यकर्म करने वालों की यम लोक में स्थिति मानी है वहां पर परवर्ती साहित्य में आ कर पाप कर्म करने वालों का निवासस्थल इस यमलोक में बताया है जो कि पृथिवी के नीचे है[3]। यास्क ने निरुक्त में यमराज्य माध्यमिक स्थान में स्थित माना है[4]। अतएव यम का राज्य मध्य लोक में है ऐसा प्रतीत होता है। सम्भव है कि यहां यास्क ने यम को अन्तरिक्ष स्थानीय देवता मान कर उस का स्थान भी मध्य में ही मान लिया है। परन्तु यम को देवता रूप में कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता यद्यपि उस का वर्णन अन्य देवताओं के साथ हुआ है।

<u>यम लोक की स्थिति</u> पूर्व विवरण से पता चलता है कि मृत्यु के उपरान्त मनुष्य यमलोक में जाता है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वह यमलोक कहां पर स्थित है। जैसा कि यम की दक्षिण दिशा मानी गई है अत: यह यमलोक दक्षिण में ही कहीं पर स्थित होना चाहिए[5]। ऋग्वेद में तीन

१- धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलो भवत्।
तां वै यमस्य राज्ये आश्रितामुप जीवति ।। अथर्व० १८.४.३२.

२- वही १८.२.३७.

३- एष उ एवासाधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्यो धो जिनीषते।
कौ० ब्रा० उप० ३.८.

४- नि० ११.१८.

५- अथर्व० ६.७.२०, मै० सं० ४.६.५., तै० सं० ५.५.६-१०.५.,बृ० उ० ३.६.२१.

द्युलोक माने गए हैं जिनमें दो सूर्य के पास तथा एक (अन्तरिक्ष) यम लोक में स्थित है जहां कि वीर लोग निवास करते हैं[1]। अथर्ववेद में भी तीन ही द्युलोकों की स्थिति मानी गई है एक सब से नीचे का द्यौलोक जिस में कि जल रहता है दूसरा उस से ऊपर (मध्यम) जिसमें गृह-नक्षत्रादि स्थित हैं तथा तीसरा इस से ऊपर प्रद्यौ नाम से प्रसिद्ध है इसी में पितर रहते हैं[2]। सातवलेकर ने यहां तीन द्युलोकों को इस प्रकार माना है कि दो सूर्य के समीप द्यु (बादलों से युक्त) तथा नक्षत्रादि स्थित हैं। बीच में सूर्य है तथा इस के ऊपर-नीचे ये दोनों द्यौ लोक स्थित हैं। तीसरा इन सब से ऊपर प्रद्यौ नाम से यमलोक है जिसमें कि पितर रहते हैं[3]। इसी द्यु लोक का राजा यम है क्योंकि यहीं पर पितरों का निवास है। इस से यह भी प्रतीत होता है कि यमलोक में केवल वीर लोग ही निवास कर सकते हैं। यहां विराषाट् का अर्थ भाष्यकारों ने यही किया है कि यहां आ कर वीर लोग स्थित होते हैं[4]। पितर यम के राज्य में ही रहते हैं। इस तथ्य की पुष्टि यजुर्वेद के इस मन्त्र से हो जाती है जिसमें कहा गया है कि यम के राज्य में जो पितर समान तथा एक संकल्प वाले हैं। उन के लिए दिए गए स्वधा नमस्कार आदि सामर्थ्ययुक्त हों[5]। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पितर यम के ही राज्य में रहते हैं और पितरों का स्थान तीसरा द्युलोक है। इस द्युलोक का राजा,

---

१- तिस्त्रो द्याव: सवितुर्द्वा उपस्थां एका यमस्य भुवने विराषाट्।
ऋ० १.३५.६.

२- उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते।। अथर्व० १८.२.४८.

३- सातवलेकर, अथर्ववेद १८ वां काण्ड सुबोध भाष्य स्वाध्याय मण्डल पृ० २७६-७७.

४- विरान् गन्तन् सहते। प्रेता: पुरुषा अन्तरिक्षमार्गेण यमलोके गच्छन्तीत्यर्थ:। सायण भाष्य, ऋग्वेद १.३५.६.

५- ये समाना: समनस: पितरो यम राज्ये।
तेषां लोक: स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्।। मा० सं० १९.४५., का० सं० २१.४७.

विवस्वान् का पुत्र यम है इस के आगे द्युलोक समाप्त हो जाता है[1]। यह तृतीय द्युलोक सर्वोच्च है[2]। इसीलिए शायद यहीं द्युलोक की समाप्ति मानी जाती है। इस के आगे अन्य कोई लोक नहीं। इसी सर्वोच्च स्वर्ग में यम, यमी के साथ रहते हैं[3]। उपर्युक्त विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि पितर यमलोक में ही रहते हैं तथा यम उन का राजा है। यह यमलोक दक्षिण की ओर तृतीय द्युलोक में स्थित है।

यम व पितरों का सम्बन्ध

यम और पितरों का घनिष्ठ सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। यथा पितरों तथा यम की दक्षिण दिशा, पितृयाण कृष्ण पक्ष के द्वारा यमलोक को प्राप्त होना, यम का पितरों का अधिपति होना तथा पितरों का यम के राज्य में रहना, ये सभी वैदिक विवरण इन के सम्बन्ध को दर्शाते हैं।

दक्षिण दिशा   यम और पितरों की दक्षिण दिशा मानी गई है। जैसा कि अथर्ववेद में आया है कि इन्द्र पूर्व दिशा में तथा यम दक्षिण दिशा में स्थित है[4]। यही कारण है कि यम को अन्य देवताओं की तरह एक देवता के रूप में स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि देवताओं की पूर्व दिशा है तथा यम और पितरों की दक्षिण दिशा है। इसीलिए देवताओं की अपेक्षा पितरों के साथ यम का निकटतम सम्बन्ध है। ब्राह्मण-ग्रन्थों व उपनिषदों में एक लम्बे आख्यान के बाद याज्ञवल्क्य से शाकल्य के द्वारा यह पूछने पर कि दक्षिण दिशा का देवता कौन है? याज्ञवल्क्य ने इस दिशा का देवता यम को ही बताया[5]। दक्षिण दिशा

१- यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः। ऋ० ९.११३.८.

२- ऋ० ९.११३.७,९ १०.१४.८.

३- यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके धिरोहयेनम्।। वा० सं० १२.६३.

४- इन्द्र प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः।। अथर्व० ९.७.२०.

५- किं देवतोऽस्यां दक्षिणायां दिश्यसीति। यम देवत इति। मा० श० ब्रा० १४.६.९.२२., बृ० उ० ३.९.२१.

का स्वामी होने से उस दिशा की ओर से रक्षा करने के लिए यम की स्तुति की गई है[1] ।

यम पितरों का अधिपति   यम पितरों का स्वामी है[2] तथा पितर उस की प्रजा है[3] । पितर यम के राज्य में ही रहते हैं इसीलिए मृतक को लक्ष्य करके कुछ ऐसे मन्त्र कहे गए हैं जिनमें मृतक द्वारा यम से शासित पितरों में स्थान प्राप्त किए जाने का उल्लेख मिलता है[4] । यह यमलोक पितृलोक भी कहलाता है क्योंकि इसमें पितरों का निवास है[5] । यम पितरों का स्वामी है, इस के विषय में अथर्ववेद में व्रात्य (अतिथि) का प्रसंग आता है जिस में कहा गया है कि जब वह व्रात्य पितरों में आया तो यम पितरों का राजा बन कर पितरों के लिए स्वधा करके दिए हुए अन्न को खाता हुआ व्रात्य के पीछे पीछे चल दिया[6] । तैत्तिरीय संहिता में स्पष्टतया कहा गया है कि पितर यम के राज्य में ही रहते हैं और यम उन का राजा है तथा यहीं पर अग्नि को जो कि देवताओं को दिए गए भोजन का भक्षण करने वाला है, उस के साथ पितरों के राजा यम को यज्ञ में आमन्त्रित किया गया है[7] ।

१- पितरस्त्वा यम राजानः पितृभिर्दक्षिणतो रोचयन्तु । मै० सं० ४.६.५.,
   पितरस्त्वा यम राजानः पितृभिर्दक्षिणतः पान्तु । तै० सं० ५.५.६.१०.५.
२- यमः पितृणामधिपतिः । अथर्व० ५.२४.१४.
३- यमो वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विशः । मा० श० ब्रा० १३.४.३.६.
४- अथर्व० १८.२.२५., १८.२.४६.
५- वा० सं० १९.४५., तै० ब्रा० २.६.३.४., मा० श० ब्रा० १८.१.१८-१९.,
   कौ० ब्रा० १६.८., जै० उ० १.१२.२.
६- सयत् पितॄननुव्यचलद् यमो राजा भूत्वाऽनुव्यचलत् स्वधाकारं अन्नादं कृत्वा ।।
   अथर्व० १५.१४.१३.
७- अन्नाधेन देवा अग्निमुपामन्त्रयन्त राज्येन पितरो यमं तस्मादग्निर्देवानामन्नादो यमः पितृणां राजा । तै० सं० २.६.६.५.,

यम श्रेष्ठ पितर यम को पितरों में से श्रेष्ठ माना गया है । अथर्ववेद में पितरों से जिन में से कि यम श्रेष्ठ है, पाप से छुड़ाने के लिए प्रार्थना की गई है[१] ।

यम व पितरों के सहकार्य कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें यम तथा पितर मिल कर करते हैं । स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यम व पितरों की सहमति आवश्यक मानी गई है । इसीलिए निऋति से प्रार्थना की गई है कि वह यम तथा पितरों के साथ मिल कर उन की सहमति से मृतात्मा को स्वर्ग में पहुंचा दे[२] । अन्त्येष्टि विषयक मन्त्रों में पितरों से मृतक के लिए स्थूणा धारण करने के लिए तथा यम से आधार स्तम्भ पर स्थान दिए जाने के लिए प्रार्थना की गई है[३] । इस से प्रतीत होता है कि मरने पर यम तथा पितर मिल कर मृतात्मा को स्थान देते हैं । सातवलेकर जी ने अथर्ववेद के एक मन्त्र के भाष्य में लिखा है कि यम पितरों के साथ मिल कर मनुष्य को पूर्णायु तथा पूर्ण सुख देता है[४] । वस्तुत: इस मन्त्र में उस पात्र का वर्णन है जिस में पके हुए हव्य की यम तथा पितर मिल कर रक्षा करते हैं[५] ।

यम का यज्ञ में पितरों के साथ जाना

यम पितरों के साथ आनन्दोपभोग करता हुआ साथ-साथ हवि भक्षण

१- पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस: । अथर्व० ११.६.११.

२- यमेन त्वं पितृभि: संविदान उत्तमं नाकं अधिरोहयेयम् । यजु० १२.६३.,
शौ० सं० ६.६३.३., ६.८४.४., पै० सं० १६.११.५.

३- ऋ० १०.१८.१३., अथर्व० १८.३.५२.

४- सातवलेकर भाष्य, अथर्ववेद १२.३.८.

५- तस्मिन् वां यम: पितृभि: संविदान: पक्वाय शर्म बहुलं नियच्छात् ।
अथर्व० १२.३.८.

करता है[1] । ये यम और पितर) साथ साथ ही विचरण करते हैं[2] । यज्ञ में पितरों के साथ ही यम का आह्वान किया गया है तथा वे यज्ञ में इकट्ठे ही आते हैं । यम की स्तुति में कहे गए मन्त्रों में उस का नाम विशेषत: अङ्गिरसों के साथ लिया गया है । उन के साथ यज्ञ में आ कर यम के द्वारा यजमान-प्रदत्त हवि को ग्रहण किये जाने का उल्लेख मिलता है[3] । अंगिरा नामक पितरों के साथ कुश पर बैठने के लिए यम की स्तुति की गई है तथा हवि ग्रहण करने के अनन्तर प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना की गई है[4] । इस के अतिरिक्त यम के पिता विवस्वान् का भी यज्ञ में आह्वान किया गया है । यम से अंगिरा नामक पितरों सहित यज्ञ में आने के लिए तथा उस के पिता विवस्वान् से यज्ञ में कुश पर बैठ कर हवि (ग्रहण) करने के लिए कहा गया है[5] ।

यम के लिए स्वधा पितरों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने से यम को भी पितरों की भान्ति स्वधा दिए जाने का निर्देश मिलता है[6] । अथर्ववेद में कहा गया है कि विराट् उत्क्रमण करती हुई पितरों के पास गई पितरों ने उस को (स्वधा को) अपने पास बुलाया उस का वत्स यम था और उस का पात्र चांदी का था । अन्तक

१- तेभिर्यम: संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भि: प्रतिकाममत्तु ।ऋ० १०.१५.८.,यजु० १९.५१.

२- अथर्व० १८.२.२१.

३- ऋ० १०.१४.३., तै० सं० २.६.१२.५., मै० सं० ४.१४.१६.(२३३)
अथर्व० १८.१.४७., तै० ब्रा० २.६.१६.२.

४- इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभि: पितृभि: संविदान: ।
आ त्वा मन्त्रा: कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ।।
ऋ० १०.१४.४., अथर्व० १८.१.६०., तै० सं० २.६.१२.६., मै० सं० ४.१४.१६(२३२

५- अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व । विवस्वन्तं हुवे य: पिता ते-ऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ।। ऋ० १०.१४.५., अथर्व० १८.१.५९.,
तै० सं० २.६.१२.६., मै० सं० ४.१४.१६.(२३१)

६- यमाय पितृमते स्वधा नम: । अथर्व० १८.४.७४.

ने उस स्वधा का दोहन किया। पितर इसी स्वधा से उपजीवन करते हैं अर्थात् शक्ति प्राप्त करते हैं[1]। इस सूक्त का देवता विराट् है। अत: प्रतीत होता है कि यह विराट् एक ऐसी रहस्यमयी शक्ति है जो विभिन्न रूपों में प्रकट होती है तथा यह स्वधा उसी का एक रूप है। प्रसिद्ध विद्वान् ग्रिफिथ को भी यही अर्थ अभिप्रेत है[2] तथा कैलाशचन्द्र जी ने भी इस स्वधा को विराट् की ही पोषक-शक्ति माना है[3]।

यम का देवताओं के साथ सम्बन्ध

पितरों के अतिरिक्त यम का देवताओं के साथ भी सम्बन्ध है। ऋग्वेद में यम का उल्लेख इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि और मातरिश्वा देवताओं के साथ एक ही सत्ता के पर्याय रूप में मिलता है। इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में नराशंस, पूषा, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, त्रित्, वात, उषस और अश्विनों के साथ यम की स्तुति की गई है[5]। यम और वरुण तो साथ साथ ही यमलोक में शासन करते प्रतीत होते हैं[6]। सुपलाश वृक्ष के नीचे देवताओं के साथ सोमपान करके यम उन के साथ इकट्ठे बैठ कर आनन्दोपभोग करता है[7]। यम का धाम भी देवनिर्मित बताया जाता है[8]। अग्नि के साथ यम का विशेष सम्बन्ध है जो कि मृतात्माओं

१- अथर्व० ८.१३.६-८.

२- Griffith, Hymns of the Atharvaveda, P.421-26.

३- कैलाशचन्द्र, पितृपूजा पृ० ११०.

४- ऋ० १.१६४.४६., अथर्व० ६.१०.२८.

५- नरा वा शंस पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा। सूर्यामासा यमं दिवि त्रितं वातमुषसक्तुमश्विना ।। ऋ० १०.६४.३.

६- ऋ० १०.१४.७., अथर्व० १८.१.५४. (७)- ऋ० १०.१३५.१.

८- ऋ० १०.१३५.७.

को यमलोक में ले जाता है । अत: अग्नि का विशेष प्रेम-पात्र है[1] । अग्नि को यम का मित्र कहा गया है तथा यह धारणा भी प्रचलित है कि अग्नि का पता यम ने ही लगाया था[2] । इस के अतिरिक्त यज्ञ में यम के लिए सोम रस निकालने के लिए तथा हवि प्रदान करने के लिए कहा गया है जिसमें अग्नि ही दूत बन कर उस यज्ञ को यम के पास पहुंचाता है[3] । देवताओं की भान्ति ही यम को सोमरस, घी तथा अन्न की हवियां यज्ञ में दी जाती हैं[4] । उपर्युक्त उद्धरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि यम भी अन्य देवताओं की भान्ति एक देवता है । इसीलिए रहूनी ने भी यही माना है कि यम वास्तव में एक देवता है[5] । किन्तु यम को स्पष्टतया देव न कह कर अधिकतर मृतकों के राजा रूप में ही अधिक वर्णित किया गया है ।

यम और स्वप्न का सम्बन्ध

यम का स्वप्न के साथ भी विशेष सम्बन्ध है । स्वप्न को यम का पुत्र तथा वरुणानी को इस की माता मान कर इसे अररु नाम वाला कहा गया है[6] । सातवलेकर ने यहां अररु का अर्थ पीड़ा देने वाला किया है[7] तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण

१- ऋ० १०.२१.५., अथर्व० १२.२.४५.

२- तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् । ऋ० १०.५१.३.

३- यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हवि: ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृत ।। ऋ० १०.१४.१३.,
अथर्व० १८.२.१.

४- ऋ० १०.१४.१४.,१५., अथर्व० १८.२.३.

५- Quoted by Carnoy, A.J; JAOS P.317.

६- वरुणानी ते माता यम: पितारुरुर्नामासि ।। अथर्व० ६.४६.१.

७- अतिहिंसनयो: अररु: । सातवलेकर भाष्य, अथर्ववेद १८ वां काण्ड पृ० २८३.

में यह अररु नाम एक असुर के लिए प्रयुक्त हुआ है[1] । स्वप्न यमलोक में उत्पन्न होकर संसार में मनुष्यों के हृदयों में प्रविष्ट हो जाता है[2] । इसीलिए निद्रा के विषय में यह कल्पना प्रचलित है कि यह यमलोक से आती है । स्वप्न को देवपत्नियों का पुत्र कहा गया है अर्थात् इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न वासनाओं से स्वप्न की उत्पत्ति होती है । स्वप्न को यम का करण कहा है क्योंकि यम के कार्यों का साधक है । अन्त करने वाला तथा मारने वाला है[3] । स्वप्न को यम का करण इसलिए बताया गया है कि वह यम के मारने के कार्यों में सर्वाधिक आवश्यक साधन है । पाणिनि ने भी करण का यही लक्षण बताया है जो कार्य साधने में समीपतम साधन है, वही करण है[4] । यम के कार्य में किस प्रकार करण रूप में प्रयुक्त होता है । इस का विवरण यों है कि स्वप्न को ग्राही का (शरीर को जकड़ने वाले रोग) पुत्र, निर्ऋति का पुत्र, निर्भूति (ऐश्वर्य सम्पत्ति नाशक) का पुत्र तथा पराभूति (तिरस्कार) का पुत्र भी कहा है[5] । यह सब रोग ऐसे हैं जिनसे कि मनुष्य की शीघ्र मृत्यु हो जाती है तथा दुःस्वप्न को तो साक्षात् मृत्यु ही माना गया है । इसीलिए दुःस्वप्न नाश के लिए यम से प्रार्थना की गई है[6] । इस प्रकार उक्त कारणों से मनुष्य को निद्रा नहीं आती तथा भयानक रोग लग जाते हैं जिससे जल्दी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तथा दुःस्वप्न आने वाली विपत्ति के सूचक होते हैं ।

यम के कार्य

प्राणों का अपहरण करने वाला — यम का मुख्य कार्य प्राणियों के जीवन का अपहरण करना है । यम के कुछ दूत हैं जिन के द्वारा कि उसे इस कार्य में सहायता

१- तै० ब्रा० ३.२.६.४. (२)- शौ०सं०१९.५६.१., पै० सं० ३.८.१.

३- वही (अथर्व०) ६.४६.२.

४- साधकतमं (अष्टा० १.४.४२.)

५- शौ०सं०१६.५.१,२., १६.५.४-७, पै० १७.२४.१, ५-७.

६- वही १६.५.३,१०.

मिलती है। अथर्ववेद में कुछ स्थलों पर यम के द्वारा भेजी गई निऋति से लोहे के बने हुए पाशों से मुक्त करने के लिए प्रार्थना की गई है तथा प्राणापहरण करने वाले यम के लिए नमस्कार करने का विधान मिलता है[1]। अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह ज्येष्ठघ्नी तथा विचृत् नक्षत्रों में पैदा हुए कुमार की यम के कुटुम्ब नाश वाले कार्य से रक्षा करके उसे मरने से बचाए[2]। यम के पिता विवस्वान् को अमरता प्रदान करने के लिए तथा वृद्धावस्था तक रक्षा के लिए प्रार्थना करने का उल्लेख मिलता है जिस से कि प्राण मृत्यु को प्राप्त नहीं होते[3]। यम को मार्ग में सुरक्षा प्रदान करने वाला माना गया है तथा उस से अहिंसा के लिए प्रार्थना की गई है[4]। भट्टभास्कर ने अपने भाष्य में इस का यह अर्थ किया है कि यहां पर यम को महान् लोक का स्वामी मान कर उसे देशान्तर गमन में सुन्दर पथ अथवा अच्छे कर्म करने के लिए तथा मृत्यु उपरान्त दूसरे लोक में जाते हुए अभय तथा अहिंसित करने के लिए यम से प्रार्थना की गई है[5]। ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक को यमलोक में जाते समय पथ में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है अथवा ऋग्वेद में वर्णित यम के दूतों से जो कि कुत्ते (माने गए) हैं उन से जिस प्रकार बच निकलने के लिए प्रार्थना की गई है। उसी प्रकार सम्भव है कि यहां भी उसी बात की ओर संकेत करके यम को मार्ग में सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गई हो।

१- नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् विचृता बन्धपाशान्।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ।।
अथर्व० ६.३२.२., ८४.३.

२- शौ० सं० ६.११०.२., पै० सं० १६.२०.१.

३- वही १८.३.६२.

४- तयमो राजा भगवान्विचष्टाम्। लोकस्य राजा महतो महान्हि। सुगं नः पन्थामभयं कृणोतु इति। तै० ब्रा० ३.१.२.११.

५- भट्टभास्कर भाष्य, तै० ब्रा० ३.१.२.११.

अन्य कार्य   प्राणापहरण करने के अतिरिक्त यम के कुछ अन्य कार्य भी हैं।

पितृयाण मार्ग का ज्ञाता यम ने ही सर्वप्रथम उस लोक को जाने का मार्ग ढूंढा था जिस से बाद में जाने वाले पितर लोग उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए यम लोक में पहुंच गए और आज भी इसी पितृयाण मार्ग के द्वारा मृतकात्मा अपने अपने कर्मों के अनुसार जाते हैं[१]।

स्वर्ग में पहुंचाना   स्वर्ग में जाने के लिए यम की सम्मति आवश्यक मानी गई है।

निर्ऋति को नमस्कार करके उसे यम तथा यमी से मिल कर मृतकात्मा को स्वर्ग में पहुंचाने के लिए कहा गया है[२]।

दीर्घायु प्रदान करना यम के लिए घी से परिपूर्ण हवि को दिए जाने का तथा उस से दीर्घायु के लिए प्रार्थना किए जाने का उल्लेख मिलता है[३]। यम को अन्न का स्वामी माना गया है तथा वह अन्न प्रदान करने वाला है। इसीलिए यम से अन्न का भक्षण करते हुए दीर्घायु के लिए प्रार्थना की गई है[४]। नवीन उत्पन्न अन्न का कुछ अंश भी यम को दिए जाने का उल्लेख मिलता है जिस से यज्ञ के योग्य अन्न मधुरतापूर्ण हो जाता है[५]। अतएव यम के लिए हवियां प्रदान करने से वह प्रसन्न हो कर मनुष्य को दीर्घायु देता है।

१- ऋ० १०.१४.२., अथर्व० १८.१.५०.

२- मा० सं० १२.६३., काण्व सं० १३.६४., मा० श० ब्रा० ७.२.१.१०.

३- यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत। स नो देवेष्वा यमद्दीर्घायुः प्रजीवसे। ऋ० १०.१४.१४., अथर्व० १८.२.३.

४- अथर्व० १८.४.५४.

५- अथर्व० ६.११६.१.

मनुष्यों से रक्षा करना यम का अन्य देवताओं के साथ आह्वान किये जाने का विधान भी मिलता है। यहां दूसरे देवताओं से अलग-अलग स्थानों से रक्षा करने के लिए प्रार्थना की गई है वहां यम के द्वारा मनुष्यों से रक्षा किए जाने के लिए स्तुति की गई है[१]।

अकाल मृत्यु से रक्षा करने वाला यम को अकाल मृत्यु से रक्षा करने वाला भी माना गया है। अन्य देवताओं के साथ यम को वध के कारण होने वाली मृत्यु से रक्षा किये जाने के लिए कहा गया है[२]।

उपर्युक्त स्थलों पर दृष्टिपात करते हुए यह कहा जा सकता है यम को मनुष्यों के हित के लिए अनेक कार्य करने वाला माना गया है जिससे यम का स्वरूप कल्याणकारी राजा के रूपमें ही प्रदर्शित होता है।

यम के दूत

जैसा कि यम को मारने वाला तथा मृतकों का राजा माना गया है। प्रश्न उपस्थित होता है क्या इस लोक में वह स्वयं आ कर मनुष्यों को मारता है अथवा किसी की सहायता लेता है। उस को विभिन्न सूचनाएं किस प्रकार प्राप्त होती है? इसका उत्तर है कि हम इस संसार में भी देखते हैं कि एक राजा की सहायता के लिए कुछ सहायक नियुक्त होते हैं जो कि उस के कार्य-भार में हाथ बंटाते है तथा बाह्य एवं आन्तरिक स्थितियों से अवगत कराने वाले कुछ अन्य गुप्तचर अथवा दूत होते हैं। इसी प्रकार यम राजा के भी अपने कुछ दूत हैं जो कि विभिन्न सूचनाएं उसे देते रहते हैं तथा उस के कार्य भार में सहायता करते हैं।

१- अथर्व० १६.४.४.

२- अथर्व० १६.२०.१.

वृद्धावस्था तथा मृत्यु यम के दूत — यम के द्वारा भेजे गए दूत संसार में विचरण करते रहते हैं। वृद्धावस्था व मृत्यु यम के ही दूत हैं जिन्हें दूर भगाने के लिए तथा दीर्घायु के लिए ऋषि प्रार्थना करता है[1]। प्राणियों को मारना यमदूतों का ही कार्य है। इस बात की पुष्टि निम्न मन्त्र से होती है जिस में कि शत्रुओं के विनाश के लिए यमदूतों से कहा गया है कि वे शत्रुओं का नाश करें[2]। यहां पर मृत्यु शब्द यम के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मृत्यु जो कि यम का दूत है; प्राणधारियों के प्राणों का अपहरण करके मृतकों को पितरों के पास यम लोक में भेज देता है[3]। उपर्युक्त स्थलों पर वृद्धावस्था तथा मृत्यु को जो यम का दूत कहा गया है यह इसलिए कि जब मनुष्य बुढ़ापे की ओर पग रखता है तो यही अनुमान लगाया जाता है कि अब यह मनुष्य थोड़े समय का मेहमान है। यह बुढ़ापा ही मृत्यु की सूचना देता है कि अब इस की अवधि समाप्त हो चुकी है तथा मृत्यु उस का प्राणापहरण करके यम के पास पहुंचा देता है।

कपोत व उलूक पक्षी —— मृत्यु की ही भान्ति उल्लू तथा कबूतर को भी यम के दूत माना गया है। इसीलिए उल्लू के बोलने तथा कबूतर के द्वारा अग्नि के पास जाने को अपशकुन मान कर आने वाली विपत्तियों के सूचक माना है[4]। कपोत को प्रत्यक्षतः मृत्यु के साथ समीकृत करते हुए यम का दूत कहा गया है तथा ऋग्वेद में एक सूक्त इसी से सम्बन्धित है[5]। इस के लिए तीक्ष्ण आयुध (पक्षधारी)अस्त्र) एवं हनन हेतु विशेषणों का प्रयोग किया गया है[6]। अथर्ववेद में इन दूतों को

१- कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽपसेधामि सर्वान्।। शौ० सं० ८.२.११., पै० सं० १६.४.१.

२- अथर्व० ८.८.११. (3)- वही १८.२.२७.

४- ऋ० १०.१६५.४., अथर्व० ६.२९.१.

५- ऋ० १०.१६५., अथर्व० ६.२७.३., २९.१, ३०.२.

६- ऋ० १०.१६५.२.

स्पष्टरूप से निर्ऋति के दूत कहा गया है । कई बार कपोत व उलूक निर्ऋति द्वारा प्रेषित होते हैं तथा कई बार अप्रेषित भी आ जाते है[1] । सम्भव है इन के ऐसे आगमन से उत्पन्न अनिष्टकर परिणाम में आनुपातिक तीव्रता में कमी समझी जाती होगी[2] । कपोत तथा उलूक से वीरों की हिंसा न करने के लिए प्रार्थना की गई है[3]। पैप्पलाद संहिता में यम और मृत्यु के दूत समान ही प्रतीत होते हैं यहां उलूक को ही इन दोनों का दूत माना गया है[4] । यहां मृत्यु शब्द यम के लिए ही प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है । उलूकों का सम्बन्ध राक्षसों के साथ भी माना गया है तथा इन्द्र से हिंसा करने वाले उलूकों तथा राक्षसों को विनष्ट करने की प्रार्थना की गई है[5] । ब्राह्मण ग्रन्थों तथा गृह्य सूत्रों में कपोत का गृह-प्रवेश अथवा प्रकट होना अपशकुन माना गया है[6] । इस प्रकार कपोत तथा उलूक को भी अत्यन्त अनिष्टकर मान कर उन्हें दुर्भाग्य एवं विनाश सूचक के रूप में वर्णित किया गया मिलता है ।

दो अश्व — इन दूतों की ही तरह यम के दो अश्वों का भी वर्णन मिलता है जिनको हिरण्याक्ष तथा लौह-खुर वाला कहा गया है[7] । ऐह्नी ने इन्हें यम के दूत ही माना है जैसे कि सूर्य कुछ पक्षी अपने दूतों के रूप में रखता है इसी प्रकार यम के भी कुछ दूत हैं जिनमें कि यह दो अश्व भी उस के दूत-रूप में दिखाई देते हैं[8] ।

१- अथर्व० ६.२६.२.

२- शर्मा, कृष्ण लाल; वैदिक साहित्य में शकुन एवं घटनाएं १६७० पृ० १३७.

३- अथर्व० ६.२६.३.

४- पै० सं० २०.६०.४-५.

५- ऋ० ७.१०४.२२., अथर्व० ८.४.२२.

६- श० ब्रा० ५.८. आ० गृ० सू० ४.१५., कौ० गृ० सू० ५.५.

७- हिरण्यकेशान् सुधुरान् हिरण्याक्षानयश्शफान् । अश्वाननश्यतो दानं यमो राजाभितिष्ठति । काठक सं० ३८.१२., तै० आ० ६.५३.

८- Quoted by Carnoy A.J., JAOS Vol.36 P.317.

दो श्वान यम के दूत पूर्ववर्णित दूतों के अतिरिक्त यम के अन्य दूत दो कुत्ते माने गये हैं, यह दो श्वान् सरमा के पुत्र, चार नेत्रों वाले तथा रंग बिरंगे हैं मृतक को इन कुत्तों से बच कर पितरों के पास जाने के लिए कहा गया है[१]। यह चार आंखों वाले यम के कुत्ते यम-मार्ग की रक्षा करने वाले तथा मनुष्यों को देखने वाले हैं। इसीलिए यम से प्रार्थना की गई है कि वह अपने इन कुत्तों के द्वारा किसी प्रकार का अकल्याण न होने दे[२]। लम्बी नाक वाले, प्राणों के भक्षण से तृप्त होने वाले अत्यन्त बलवान् ये दोनों कुत्ते हर समय मनुष्यों के पीछे पीछे विचरण करते रहते हैं। सूर्य के दर्शनार्थ चिरकाल तक जीवन में आनन्द लेने के लिए इन से प्राणों की भिक्षा मांगी गई है[३]। सायण[४] तथा वेंकटमाधव[५] ने भी इन कुत्तों को प्राणियों के प्राणों से तृप्त होने वाला (असुतृप्) ही माना है। किन्तु पश्चिमी विद्वान् कीथ[६] तथा मैकडौनल[७] ने 'असुतृप्' का भिन्न अर्थ किया है। उन के अनुसार जीवन में आनन्द लेते हुए (असुतृप्) यह श्वान मनुष्यों का निरीक्षण

१- ऋ० १०.१४.१०., अथर्व० १८.२.११.

२- यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परिदेहि राजन् स्वस्ति चास्मा अनमीवञ्च धेहि ॥
ऋ० १०.१४.११., अथर्व० १८.२.१२.

३- उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ ऋ० १०.१४.१२., अथर्व० १८.२.१३.

४- असुतृपौ परकीयान्प्राणान् स्वीकृत्य तैस्तृप्यंतावुदुंबलावुरुबलौ।
सायण भाष्य, ऋ० १०.१४.१२.

५- प्राणिनाम् असुभिः तृप्तौ - - - - - -। वेंकटमाधव भाष्य, ऋ० १०.१४.१२.

६- Keith, A.B.: RPVU, Part II. P.406

७- Macdonell, A.A.: VM, P.173

करते हुए यम के दूतों के रूप में जनों के मध्य विचरण करते हैं। इस प्रकार मरणासन्न मनुष्यों का पता लगाना तथा यमलोक के पथ से हो कर यमलोक में प्रवेश करने वाले लोगों पर दृष्टि रखना इन का प्रमुख कार्य प्रतीत होता है। यम के इन दोनों कुत्तों का रंग श्याम तथा चितकबरा (शबल) है तथा ये दोनों यमलोक के मार्ग की रक्षा करते हैं [१]। अवेस्ता में भी एक चार नेत्रों वाले तथा पीले कानों वाले कुत्ते का उल्लेख मिलता है जो कि 'चिन्वट् पुल' के किनारे रखवाली करता है यह सेतु इस लोक से परलोक को मिलाता है और यह कुत्ता अपनी भौंक से दानवों को इसलिए दूर भगा देता है जिस से कि वे पवित्रात्माओं को नरक में न घसीट ले जाएं [२]। कुछ विद्वानों ने कहा है कि इस बात को स्वीकार करने के लिए पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं कि ये दोनों श्वान दुष्टों की आत्मा को यमलोक में जाने से रोकते थे तथापि इस मान्यता की संभावना अवश्य है [३]। जैसा कि औफरेष्ट (Aufrecht) ने ऋग्वेद पर व्याख्या करते हुए लिखा है कि इन इन कुत्तों का उद्देश्य दुष्टात्माओं को बहिष्कृत करना ही था [४]। इन दो कुत्तों की प्रकृति-सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों ने प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक कहा है जब कि अन्य ने वास्तव में ही कुत्ते माना है।

जैसा कि इन दोनों कुत्तों को सरमा के पुत्र कहा गया है। अतः सर्वप्रथम यह विचारणीय है कि सरमा कौन है?

१- श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ - - - - -।
अथर्व० ८.१.९.

२- SBE; 4, P lXXlV

३- Quoted by Macdonell V.M. P.173

४- Quoted by Macdonell V.M. P.173

सरमा कौन है ? —— यास्क के अनुसार सरमा शब्द सृ धातु से गत्यार्थक में बनता है । यह सरमा देवशुनी है जो कि इन्द्र के द्वारा पणि असुरों के पास भेजी गई थी । सायण ने भी सरमा को देवों की कुतिया कहा है तथा ये दोनों श्वान उस के पुत्र हैं[१] । सातवलेकर जी ने अथर्ववेद भाष्य में सरमा का अर्थ बहुत दौड़ने वाली किया है[२] । सर मोनियर विलियम्स ने सरमा का अर्थ देवों की कुतिया मान कर इस के साथ ही इसे दक्षा की पुत्री कहा है[३] । ऋग्वेद में इस सरमा का एक दूती के रूप में ही उल्लेख आया है । वह इन्द्र की गौओं का पता लगाती है जो कि पणि राक्षसों द्वारा चुराई गई हैं[४] । बृहद्देवता[५] तथा सर्वानुक्रमणी[६] में भी सरमा का देवों की कुतिया रूप में ही उल्लेख मिलता है जो कि इन्द्र के द्वारा दूत-रूप में पणियोंके पास भेजी गई थी । ग्रिफिथ के अनुसार भी सरमा इन्द्र की कुतिया है तथा उस के ये दोनों पुत्र सारमेय हैं[७] किन्तु मैकडोनल ने स्पष्ट रूप

१- सरमा नाम देवशुनी तस्याः पुत्रौ: । सायण भाष्य ऋ० १०.१४.१०.

२- सातवलेकर जी ने (अथर्व० भाष्य १८.२.११ में) कहा है कि सरमा शब्द सृ गतौ धातु से बाहुलक से अम् करने पर बनता है जिस का अर्थ बहुत दौड़ने वाली है । उस का पुत्र सारमेय है स्त्रीभ्यो ढक् से ढक् । सारमेय का अर्थ हुआ बहुत दौड़ने वाली का पुत्र । लौकिक साहित्य में सारमेय का अर्थ कुत्ता प्रचलित है ।

३- Williams, M: Sanskrit English Dictionary, P.771

४- ऋ० १०.१०८.

५- बृहद्देवता ८.२५.

६- अन्वेष्टुं सरमां देवशुनीम् इन्द्रेण प्रहिताम् ।

ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी १०.१०८.

७- Griffith 'Hymns of the Rgveda' English translation

Rgveda 10.14.10

से इस बात को अस्वीकार किया है कि इस बात के लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता कि ऋग्वेद में सरमा को देवों की कुतिया के रूप में माना जाता था, यद्यपि उत्तर वैदिक साहित्य में यह नाम कुतिया का पड़ गया है[1]। कुछ विद्वानों ने ऐसा माना है कि वेदों में बहुत से प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अलंकार रूप से आता है। जिन को ठीक अर्थ में न जान कर साधारण लोगों ने इन्हें वेदों से निकली हुई ऐतिहासिक कथाएं मान लिया है। इसी प्रकार इस सूक्त (ऋ० १०.१०८) में भी सरमा जो कि उषा है उस का अलंकार रूप से वर्णन है। यहाँ इन्द्र का अर्थ सूर्य है तथा पणि लोग मेघ और अन्धकार ही है। यह गौएं सूर्य की किरणें है रात्रि काल में अन्धकार सूर्य-किरणों को अपने अन्दर छिपा लेता है और प्रात: उषा (सरमा) इन छिपी हुई रश्मियों का सन्देश सूर्य को देती है[2]। प्रसिद्ध विद्वान् अरविन्द ने सरमा को इस रूप में चित्रित किया है कि चाहे उसे सुन्दर पैरों वाली देवी माना जाए जो कि मार्ग पर तेजी से आती है और सफलता प्राप्त करती है अथवा इस रूप में कि वह देवशुनी है जो मार्ग के इन विशाल गति वाले संरक्षकों (सारमेय) की माता है। विचार एक ही है कि वह सत्य की एक शक्ति है, जो खोजती है और पता पा लेती है, जो अन्तर्दृष्टि की एक दिव्य शक्ति द्वारा छिपे हुए प्रकाश का और अप्राप्य अमरता का पता लगाती है। खोजना और पता पा लेने तक ही उस का व्यापार सीमित है[3]। पाश्चात्य विद्वान् कीथ के अनुसार पणियों के आख्यान में इन्द्र की दूती बन कर आने वाली सरमा एक कुतिया थी। यह मान्यता ऋग्वेद में व्यक्त नहीं हुई है किन्तु परवर्ती ग्रन्थों एवं यास्क द्वारा प्रतिपादित की गई है। इन सभी स्थलों पर या तो पश्वाकृतिदेववादी प्रयोग है अथवा मनुष्य और पशुओं के सम्बन्ध के आदर्श पर देवताओं के साथ पशुओं का

१- Macdonell, A.A. V.M. P.151

२- रामगोपाल, वेदों में यम का स्वरूप, वेदवाणी-वेदाङ्क (१२) वर्ष १६ पृ० ३०.

३- अरविन्द, वेद रहस्य, प्रथम खण्ड, पृ० ३०७.

स्वाभाविक संयोग है[१]। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यही प्रतीत होता है कि सरमा देवताओं की दूती है तथा उस के पुत्र दो कुत्ते हैं जो कि सारमेय कहलाते है। इस की पुष्टि सिद्धेश्वर शास्त्री जी इस प्रकार करते हैं कि सरमा देवलोक की एक कुतिया है जो कि इन्द्र की दूती मानी जाती है श्याम एवं शबल नामक दो कुत्ते इसी के पुत्र होने के कारण सारमेय कहलाते हैं। संसार के समस्त सारमेय (कुत्ते) भी इसी की ही संतान माने जाते हैं[२]।

इन दो दूत कुत्तों के विषय में विभिन्न मत एवं निर्णय

पाश्चात्य विद्वानों के मत

पाश्चात्य विद्वानों ने इन कुत्तों को भिन्न-भिन्न संज्ञा दी है। बेर्गेन का विचार है कि ये दो सारमेय यम (अग्निरूप) और यमी के ही दूसरे रूप हैं और परवर्ती गाथा के उस गुण को आरम्भ में ही विकसित हो चुकी बताते हैं जिस के अनुसार यम को स्वयं मृतकों को ले जाने वाले के रूप में व्यक्त किया जाता है[३]। एहनी ने इन्हें पश्चिमी और दक्षिणी वायु माना है[४]। ब्लूमफील्ड यम के दोनों कुत्तों को सूर्य और चांद के साथ समीकृत करते हैं[५]। जो सम्भवत: दिन और रात्रि के ही वाचक हैं तथा यह बात शतपथ ब्राह्मण के उस कथन पर आधारित प्रतीत होती है, जहां कि चन्द्रमा को भी एक आकाशीय श्वान कहा

१- Keith, A.B.: RPVU का सूर्यकान्त कृत हिन्दी अनुवाद वैदिक धर्म एवं दर्शन, प्रथम भाग, पृ० २३८.

२- शास्त्री, सिद्धेश्वर; भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश, पृ० १०२३.

३- Be gaigne, Vedic Religion, tr. by Paranjpe, V.G. P.95

४- Quoted by Bloomfield, JAOS, Vol. XV. P.169

५- Bloomfield, M. JAOS, 1893, Vol.XV. P.163-72. cp. also Rajendra Lal Mitra, PRASB May 1881 P. 94,96.

गया है[१] ।

भारतीय विद्वानों के मत

कुछ भारतीय विद्वानों ने भी इन श्याम और शबल वर्ण कुत्तों को रात व दिन स्वीकार किया है । सातवलेकर जी ने इन्हें दिन व रात्रि की संज्ञा दी है । यही दिन व रात मनुष्यों के पीछे प्राणापहरण के लिए लगे हुए हैं । दिन और रात्रि के गुजरते हुए क्रम में ही मनुष्य की आयु क्षीण होती जाती है । इसी स्थल पर एक और शंका उठाई है कि कुत्ते के लिए श्वान शब्द ही क्यों लिया गया जब कि इस के लिए संस्कृत में अन्य शब्द भी विद्यमान हैं । इस का उत्तर यह दिया है कि श्वान का अर्थ है (श्वा = श्व: = काल, न = नहीं) जो आज तो है पर वह कल नहीं रहेगा । जो दिन व रात एक बार बीत गए वे पुन: लौट कर नहीं आते[२] । एक और हेतु दिन रात का कुत्ते से उपमा देने का यह भी है कि जिस प्रकार एक कुत्ता अपने भाई कुत्ते को नहीं देख सकता, ईर्ष्या से चिल्लाना आरम्भ कर देता है उसी प्रकार दिन और रात्रि भी एक दूसरे से नहीं मिलते । जो इन दूतों को मार्ग में बैठने वाले कहा गया है इस का तात्पर्य यह है कि मृतात्मा या तो रात्रि से गुजर कर जाता है या दिन से तथा जो चतुरक्षौ कहा है वे दिन के चार प्रहर (दिन की आंखे) और रात्रि के चार प्रहर (रात की चार आंखें) हैं[३] । दयानन्द जी ने भी ऋग्वेद भाष्य में इन सारमेयों को सूर्य प्रभा से उपजे गतिवान् चार दिशाओं में व्याप्त श्याम रक्त वर्ण युक्त दिन और रात्रि ही माना है[४] ।

१- मा० श० ब्रा० ११.१.५.१.

२- सातवलेकर, अथर्ववेद १८ वां काण्ड सुबोध भाष्य, पृ० २७६, मंगल देव, 'यम और पितर', पृ० ८०.

३- राम गोपाल, वेदों में यम का स्वरूप, वेदवाणी वेदाङ्क (१२) वर्ष १६, पृ० ३१.

४- दयानन्द भाष्य, ऋग्वेद १०.१४.१०.

इसी अर्थ को गृहण करते हुए प्रियरत्न जी ने भी इन दो कुत्तों को दिन व रात मान कर इन की माता सरमा को उषा कहा है[१]। राम गोपाल[२] जी ने भी इसी आशय को लेकर अपने लेख में लिखा है कि ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में इन कुत्तों का वर्ण जो शबल और श्याम कहा गया है वहां शबल दिन के लिए तथा श्याम रात्रि के लिये प्रयुक्त हुआ है। इस की पुष्टि उन्होंने जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण[३] के आधार पर की है जिस में शबल शब्द दिन के लिए तथा श्याम शब्द रात्रि के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी तथ्य को कौषीतकि ब्राह्मण[४] ने और भी पुष्ट किया है जिसमें कहा गया है कि जो इस के विरुद्ध अग्निहोत्र करता है शबल (दिन) और श्याम (रात्रि) उस के अग्निहोत्र को नष्ट कर देते हैं। इसी स्थल पर दिन और रात को मृत्यु की बलवती भुजाएं कहा गया है[५]। काठक संहिता में यहां इन दो कुत्तों का यम के साथ वर्णन है वहां इन दोनों को दिन और रात्रि की संज्ञा दी गई है जो इस जगत् और मनुष्यों (की आयु) को काटते अर्थात् नष्ट करते हैं[६]। इन वैदिक सन्दर्भों को ले कर राम गोपाल जी ने यही दिखाने का प्रयास किया है कि यम के ये दोनों दूत श्वान दिन और रात्रि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। कुछ अन्य भारतीय विद्वान् इन्हें प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक न मान कर साधारण कुत्ते ही मानते हैं। बृहद्देवतागत

१- प्रियरत्न, यम-पितृ परिचय, पृ० ३४.

२- रामगोपाल, वेदवाणी वेदाङ्क (१२) वर्ष १६ पृ० ३०-३१.

३- अथ ह एतौ श्याम शबलावेव यदहोरात्रे अहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः।
जै० उ० ब्रा० १.६.

४- अथो यो ऽतो ऽन्यथाग्निहोत्रं जुहोति-श्याम शबलौ हास्याग्निहोत्रं विखिदतो-ऽहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः। कौ० ब्रा० २.६.

५- कौ० ब्रा० २.६.

६- एतौ वै यमश्वा अहश्च रात्री च ता इदं मनुष्यान् वृञ्जानौ। काठक सं० ३७.१४.(४३)

ऋग्वेदीय तृच में[1] इन्हें दो कुत्तों के रूप में ही मान कर इन की स्तुति की गई है[2]। सायण ने इन्हें देवों की कुतिया सरमा के पुत्र कहा है[3]। वेंकटमाधव के अनुसार देवशुनी सरमा के दो पुत्र दो कुत्तों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं[4]। सिद्धेश्वर शास्त्री ने सारमेय का अर्थ 'सरमा नामक कुतिया के वंशजों का सामूहिक नाम' किया है[5]। यास्क ने निरुक्त में इन्हें गति करते हुए दो कुत्ते माना है[6]। वास्तव में श्वा पद शु+या से निष्पन्न हुआ है। मात्र बुलाने से ही दौड़ आने पर शु + या > आ > श्वा अभिप्रेत हो सकता है अथवा गत्यर्थक 'शव से हो सकता है। कुत्ते की चाल की उपमा चौपड़ की चाल से दी गई है और उसी विशेष चाल के आधार पर श्वा नाम अभिप्रेत प्रतीत होता है। इसे श्वस् से भी निष्पन्न माना जा सकता है। कुत्ते के हाँफने की क्रिया से इस की पुष्टि भी हो जाती है। शिवनारायण शास्त्री ने भी उपर्युक्त विश्लेषण से अपनी सहमति प्रदान की है[7]। दुर्गाचार्य ने भी इसी अर्थ को ग्रहण किया है[8]। इस के अतिरिक्त उमाशंकर शर्मा भी श्वा का अर्थ कुत्ता, तेज चलने वाला (आशु √या) गत्यर्थक 'शव्' से या साँस लेने से मानते हैं[9]। उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर श्वानौ का अर्थ दो कुत्ते ही

१- ऋ० १०.१४.१०-१२.

२- अतिद्रव तृचौ श्वानौ परं । बृहद्देवता ६.१५.

३- सरमा नाम देवशुनी तस्याः पुत्रौ ।सायण भाष्य ऋग्वेद १०.१४.१०.

४- सरमायाः पुत्रौ श्वानौ । वेंकटमाधव भाष्य, ऋग्वेद १०.१४.१०.

५- शास्त्री, सिद्धेश्वर, भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश, पृ० १०३७.

६- श्वा शुयायी श्वतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः श्वसितेर्वा । नि० ३.१८.

७- शास्त्री, शिवनारायण; निरुक्त के पांच अध्याय, पृ० ३६६.

८- श्वा शुयायी । शु इति क्षिप्रनाम । क्षिप्रमसौ शीघ्रत्वादेती तिश्वा शवतेर्वा गतिकर्मणः स हि नित्यमेव गच्छति । श्वसितेर्वा वधकर्मणः एव/नि० ३.१८ पर दुर्गाचार्य व्याख्या ।

९- शर्मा उमाशंकर ; हिन्दी अनुवाद नि० ३.१८ पृ० ६४.

प्रतीत होता है । जैसा कि पहले कह चुके हैं कि अवेस्ता में भी यिम का दूत कुत्ता ही माना गया है जो कि " चिन्वट् पुल " के किनारे रखवाली करता है तथा अपनी भौंक से दानवों को इसलिए दूर भगा देता है जिससे वे पवित्रात्माओं को नरक में न घसीट ले जाएं । इस के साथ यम के इन दो दूत श्वानों की संगति बैठाते हुए यही कहा जा सकता है कि यम के ये दो श्वानदूत कुत्ते ही हैं । इन्हें दिन तथा रात्रि के वाचक मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि एक की समाप्ति पर दूसरे का आगमन होता है जब कि इन दो कुत्तों का वर्णन एक साथ आया है तथा वे दोनों इकट्ठे ही यम-मार्ग की रक्षा करते हैं [1] । यम के अनुचर ये दो कुत्ते ही हैं । जब रात्रि के समय समस्त जगत् सो जाता है तो ये कुत्ते ही पहरा देते हैं [2] । आज भी भारतीय विश्वास के अनुसार घर में या पड़ोस में कोई रोगी हो तो कुत्ते के रुदन को अनिष्ट सूचक माना जाता है तथा रोगी की स्थिति के विषय में यह अनुमान भी लगा लिया जाता है कि अब यह इस पृथिवी पर कुछ ही दिनों का अतिथि है । यम के जो अन्य दूतों का वर्णन वेद में मिलता है उन्हें आज भी भारतीय परम्परा अनिष्ट सूचक मानती है । यह दूत प्रथा वैदिक काल से ही चली आ रही प्रतीत होती है । जिस प्रकार किसी को पूर्व सन्देश भेजने के लिए दूत भेजा जाता है उसी प्रकार कपोत, उलूक, मृत्यु तथा वृद्धावस्था यम के दूत माने गए हैं जो कि मनुष्य को आगामी घटनाओं के विषय में सूचित करते हैं । आज भी उलूक के बोलने को अपशकुन माना जाता है तथा आने वाली आपत्ति का सूचक माना जाता है । जब कि इन दो दूत कुत्तों को साक्षात् यमदूत माना गया है तथा इन का स्वरूप भी वर्णित है ।

१- यौ पथिरक्षी श्वानौ । अथर्व० ८.१.९.
अथर्व० १८.२.२.

२- अवनीन्द्र कुमार; विश्वज्योति, अप्रैल-मई १९७२, पृ० ८७.

यम-यमी एवं मनु

ऋग्वेद का एक सम्पूर्ण सूक्त यम और यमी से सम्बन्धित है।[1] इन के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों ने इन्हें पति-पत्नी रूप में तथा अन्य ने भाई-बहन रूप में माना है। इसी प्रकार कुछ विद्वानों ने यमी के साथ यम को मानव जाति का पिता कहा है जब कि वेदों में मानव जाति का पिता केवल मनु को ही माना गया है। अत: इन सब मतभेदों पर विचार करना अत्यावश्यक है

यम-यमी कौन है? यम और यमी विवस्वान् और सरण्यू की जुड़वां सन्तान है तथा इन में यम ज्येष्ठ है[2]। यम-यमी संवाद में इन्हें गन्धर्व तथा अप्या योषा की सन्तान कहा गया है[3] जो कि सूर्य तथा सरण्यू के ही वाचक प्रतीत होते हैं।

यम-यमी का सम्बन्ध इस सूक्त के प्रारम्भ में यमी यम से विवाह सम्बन्ध स्थापित करके मानव जाति की उत्पत्ति करना चाहती है[4]। परन्तु यम उसे अपनी सहोदरा मान कर उस के प्रस्ताव को ठुकरा देता है[5]। यमी यम के द्वारा अपने प्रस्ताव को ठुकराए जाने पर उसे त्वष्टा के द्वारा गर्भ में ही इकट्ठे रख कर पति-पत्नी बनाए जाने का सम्बन्ध दर्शाती है। जिसे यह द्यु और पृथिवी भी जानते हैं[6]। यमी यम

१- ऋ० १०.१०.

२- तत: सरण्यूवां जज्ञाते यमयम्यौ विवस्वत: ।
तौ चाप्युभौ यमावेव ज्यायांस्ताभ्यां तु वै यम: ।। बृहद्देवता ६.१६३.

३- ऋ० १०.१०.४. अथर्व० १८.१.४.

४- ऋ० १०.१०.१., अथर्व० १८.१.१.

५- ऋ० १०.१०.१-२. अथर्व० १८.१.२

६- गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूप: ।
न किरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौ: ।। ऋ० १०.१०.५.

के प्रति अपनी कामवासना को व्यक्त करती है[१]। यम, ईश्वर के दूतों को सर्वत्र व्यापक मान कर ऐसा करने से इन्कार कर देता है[२]। तथा स्पष्टतया यमी के प्रस्ताव को ठुकरा कर उसे अपनी बहिन मानता है और एक ही माता-पिता से पैदा होने के कारण पारस्परिक सम्बन्ध को दर्शाता है[३]। प्रसिद्ध भाष्यकार सायण ने भी यम-यमी को भाई बहिन मान कर उनकी व्याख्या की है[४]। परन्तु दयानन्द जी ने इन्हें पति-पत्नी रूप में माना है तथा इस सूक्त[५] के एक थोड़े से अंश को लेकर उस की व्याख्या में असमर्थ पति की ओर से पत्नी को नियोग आज्ञा देना कहा है[६]। प्रियरत्न जी ने भी यम-यमी को पति-पत्नी रूप में स्वीकार किया है[७]। किन्तु दयानन्द जी की उपर्युक्त विचारधारा को युक्तिसंगत नहीं माना जा सकता। यम के द्वारा यमी के प्रस्ताव की अवहेलना की गई है एक ही माता पिता से उत्पन्न होने के कारण भाई बहिन का सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है क्योंकि भ्राता और स्वसा शब्दों का स्पष्टतया उल्लेख मिलता है[८]।

१- ऋ० १०.१०.७., अथर्व० १८.१.८.

२- न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येवचक्रा ।।
ऋ० १०.१०.८., अथर्व० १८.१.९.

३- ऋ० १०.१०.४. अथर्व० १८.१.४

४- द्र० ऋ० १०.१० पर सायण भाष्य

५- अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत। ऋ० १०.१०.१० अथर्व० १८.१.११

६- द्र० ऋ० १०.१०.१० पर दयानन्द भाष्य

७- प्रियरत्न, यम-यमी संवाद, पृ० १८-१९.

८- किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
ऋ० १०.१०.११ अथर्व० १८.१.११, १४

रौथ ने यम-यमी सूक्त के आधार पर कहा है कि यम को अनाचार के अपराध से मुक्त करने के प्रयास द्वारा यह सूचित होता है कि उस समय इस अनाचार सम्बन्धी विश्वास का भी अस्तित्व था[1]। सिद्धेश्वर शास्त्री के अनुसार यह कथा उस समय की है जब मानव समाज में नीतिशास्त्र अप्रगल्भ अवस्था में था[2]। एक अन्य विद्वान ने यमी की विवाह की प्रार्थना को इस रूप में मान लिया है कि यम यमी को यमलोक में लेने के लिए आया है और यमी यमलोक जाना नहीं चाहती। अत: वह यम को भूलोक में रहने के लिए ललचा रही है[3]। वास्तव में इस सूक्त में नैतिकता और सत्यता का जो दृश्य प्रस्तुत किया गया है उस आदर्श का दृष्टान्त अन्यत्र मिलना असंभव है यहां ऋषि ने स्पष्टतया दर्शाया है कि औरस भाई बहन की शादी कदापि सम्भव नहीं है। इस सूक्त के एक मन्त्र में यम ने यमी के प्रस्ताव का कड़ा विरोध किया है[4]। इस प्रकार बहन की स्वैरविलास वृत्ति का यम द्वारा तीव्र विरोध करा कर ऋषि ने यह सूचित किया है कि यम-यमी मानव जाति के प्रथम माता-पिता नहीं।

क्या यम मनुष्य जाति का पिता है? ऋग्वेद में यम वास्तव में यमी के साथ का एक यमज है[5]। इनका इकट्ठे स्वर्ग में रहने वालों के रूप में उल्लेख मिलता

१- Roth, JAOS 3, P.335

२- शास्त्री सिद्धेश्वर, भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश, पृ० ६७५.

३- अवनीन्द्र कुमार, 'यम-यमी संवाद' विश्वज्योति वेदांक भाग-१ १९७२ पृ० ८७

४- आ घाता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामय: कृणवन्नजामि उप बर्बृहि वृषभाय बाहुं -- - - - - - - - - - - - - - । ऋ० १०.१०.१०. अथर्व० १८.१.११

५- ऋ० १०.१० अथर्व० १८.१.१-१६

है[१] । अवेस्ता में भी यिम शब्द का अर्थ युग्म है । अवेस्ता में तो नहीं किन्तु बाद के साहित्य में " यिम " की बहन " यिमेह " का उल्लेख है जो अपने भाई के साथ प्रथम मानव दम्पत्ति का निर्माण करती है[२] । किन्तु वेदों में कहीं भी यम और यमी को मानव जाति के प्रथम माता-पिता नहीं माना गया है । उसे केवल प्रथम मरने वालों में प्रथम कहा गया है[३] तथापि कुछ विद्वानों ने यम को मनुष्य जाति का पिता मान लिया है तथा यमी को यम के साथ मानव जाति की पूर्वज मान लिया है जो कि मानव जाति की उत्पत्ति के लिए यम को आमन्त्रित करती है[४] । मैकडोनल ने भी यम-यमी संवाद में यमी ने यम से जो प्रार्थना की है उस के आधार पर वंशक्रम से उन्हें मनुष्य जाति का पूर्वज कहा है[५] । दाण्डेकर ने यम को अकेले ही मनुष्य जाति का पूर्वज माना है[६] । किन्तु यम को मनुष्य जाति का पूर्वज मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता वेद में केवल मनु को ही मानव जाति का पिता कहा गया है[७] ।

मनु कौन है ? मनु को भी यम की तरह विवस्वान् का पुत्र कहा गया है[८] । ऋग्वेद में एक मन्त्र आता है कि देवताओं ने अमर सरण्यू को छिपा लिया तथा उसी के सदृश मर्त्यों के लिए एक स्त्री का निर्माण करके विवस्वान् को दिया जिससे मनु

१- तै० सं० ४.२.५.३. वा० सं० १२.६३ श० ब्रा० ७.२.१.१०. तै० आ० ६.४.२.
२- Quoted by Macdonell; V.M.P.172
३- अथर्व० १८.३.१३
४- Heras, S.J.; 'Yama and Yami' JIH Vol.32 Part I-3 P.309
५- Macdonell, A History of Sanskrit Literature P.118
६- Dandekar, R.N.; 'Yama in the Veda' B.C. Law Vol. Part I.P.206
७- ऋ० 1.80,16,1.114.2, 10.100.5
८- परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनु प्रीतासो जनिमा विवस्वत: । ऋ० १०.६३.१.

का जन्म हुआ । उस की माता सवर्णा कही गई है[1] । यास्क ने भी मनु को विवस्वान् का पुत्र तथा सरण्यु की प्रतिनिधिभूत सवर्णा का पुत्र कहा है[2] । यास्क ने मनु शब्द की निरुक्ति माननात् (मनन करना) से की है[3] । इसी के आधार पर सिद्धेश्वर वर्मा ने इसे मन धातु से मान कर सोचना अर्थ किया है तथा इसे लौकिक (पृथिवी सम्बन्धी) देवता माना है[4] । निरुक्त में मनु को ही मानव जाति का पिता कहा गया है[5] । यह मनु शब्द अंग्रेजी के मैन (*Man*) शब्द से मिलता-जुलता है । मैन का साधारण अर्थ मनुष्य ही है । सम्भवत: इस मनु शब्द का ही परिवर्तित रूप अंग्रेजी का यह मैन शब्द हो ।

यम और मनु — एक ही पिता होने पर भी यम और मनु को समीकृत नहीं किया जा सकता । तैत्तिरीय संहिता में मानव जाति को मनु की प्रजा कहा गया है[6] । वैदिक काल के प्रारम्भ में मनु एवं यम का अस्तित्व अभिन्न प्रतीत होता है किन्तु उत्तरकालीन वैदिक साहित्य में मनु को जीवित मनुष्यों का एवं यम को दूसरे लोक में मृत मनुष्यों का आदि पुरुष माना गया है[7] । शतपथ ब्राह्मण में मनु वैवस्वत का मनुष्यों के शासक के रूप में तथा यम वैवस्वत का मृत पितरों के शासक के रूप में वर्णन मिलता है[8] । शतपथ ब्राह्मण में एक उपाख्यान है कि मनु को

१- अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्य: कृत्वी सवर्णामदद्विवस्वते ।
   उताश्विनावभरद् यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यू: ।। ऋ० १०.१७.२.

२- नि० १२.१०.

३- नि० १२.३३.

४- Verma, Siddheshwar: Etymology of Yaska, P. 244

५- मनुश्च पिता मानवानाम् । नि० १२.३४.

६- मानव्य: प्रजा: । तै० सं० १.५.१.३

७- शास्त्री सिद्धेश्वर भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश, पृ० ६०५.

८- अध्वर्युर्मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह । तस्य मनुष्या विश: । मा० श० ब्रा० १३.४.३.३.
   - - - - - वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विश: ।मा० श० ब्रा० १३.४.३.६

एक मत्स्य ने एक नौका द्वारा इस सर्वव्यापी जल-प्लाव से बचा लिया । तदुपरान्त मनु ने हविष् से उत्पन्न अपनी इडा का याग में प्रयोग किया तथा पूजा और श्रम किया जिस से प्रजा की उत्पत्ति हुई[1] । ऋग्वेद में मनु की पुत्री का भी उल्लेख आया है जिस ने कि बीस पुत्रों को जन्म दिया[2] । उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि मनु ही मानव जाति का पिता है, तथा यम केवल मरने वालों में प्रथम है ।

-०-

१- मा० श० ब्रा० १.८.१.१-१०.

२- पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् - - - - - - - - - - - ।
ऋ० १०.८६.२३.

पितर

पुण्यात्माओं के लिए स्वर्ग के अतिरिक्त एक विशेष स्थान पितृलोक की भी कल्पना की गई है। 'यम' नामक शीर्षक के अन्तर्गत बता चुके हैं कि यम के राज्य में पितर निवास करते हैं तथा यम इन पितरों का राजा है। आज भी मृतकात्मा अपने पुण्य कर्मों से पितृयाण मार्ग से इस पितृलोक को जाते हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि ये पितर कौन हैं, इन का स्वरूप आदि क्या है। ऋग्वेद में पितरों की स्तुति में दो सम्पूर्ण सूक्त कहे गए हैं[1]। अतएव स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक साहित्य में इन पितरों का विशेष महत्व है। पितरों की विस्तृत जानकारी से पूर्व इस शब्द के अर्थ को जानना आवश्यक है।

पितृ शब्द का अर्थ

पितृ शब्द का सर्व-विदित अर्थ पिता है जो कि प्रथमा एक वचन का रूप है। पितृ शब्द के विषय में विद्वानों में मतैक्य ही है। साधारणतया परिवार से सम्बद्ध होने पर इस के 'पिता' रूप का प्रयोग होता है। सन्तान की रक्षा करने वाला व्यक्ति होने से ही वह पिता कहलाता है। यास्क के अनुसार पिता शब्द की व्युत्पत्ति √पा या √पाल धातु से होती है जिसका अर्थ रक्षा करना अथवा पालन करना है[2]। शब्द कल्पद्रुम में पिता शब्द को सन्तान की रक्षा करने अर्थ में लिया गया है। तथा इस के पर्याय रूप में तात, जनक, गुरु तथा जन्मद: इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है[3]। वाचस्पत्यम्[4]

१- ऋ० १०.१४, १५.

२- पिता, पाता वा पालयिता वा √पा या √पाल। नि० ४.२१.

३- पिता, पुं, पाति रक्षात्यत्यपत्यं य:। तत्पर्याय: तात: जनक: इत्यमर:। प्रसविता, वप्ता, जनयिता गुरु जन्मद: जन्य: जनिता श० क०, तृतीय भाग पृ० १४३.

४- पितृ, पु० पाति रक्षाति - - - - - । पितर: श्राद्धदेवता इत्युक्ते श्राद्धोद्देश्य २ प्राप्त पितृलोके पितृलोक: पितृयाणम्। वाचस्पत्यम्, पञ्चम भाग:, पृ० ४३३१

में पितृ को 'पा रक्षा करना धातु से ही माना गया है । एक पितर वे हैं जो कि श्राद्धदेवता कहे जाते हैं, दूसरे वे हैं जो पितृलोक में रहते हैं तथा मृतक पितृयाण मार्ग से उसी पितृलोक को प्राप्त होते हैं । सरमोनियर विलियम्स ने अपने शब्द कोष में पितृ शब्द का पिता अर्थ किया है तथा पितरः को बहुवचन में मान कर उस का अर्थ पूर्वज अथवा मृतक पितर किया है।आगे इन पितरों के भी दो विभाग कर दिए हैं एक तो किसी व्यक्ति के पूर्वगत तीन पूर्वज यथा-पिता, पितामह प्रपितामह तथा दूसरा है मानव जाति के आरम्भिक पूर्वज[1] । प्रसिद्ध विद्वान मैकडोनल ने भी पितृ शब्द से सामान्यतया आदिम या प्रथम पूर्वज अर्थ ही ग्रहण किया है[2] । काणे के अनुसार, पितृ शब्द का अर्थ पिता है किन्तु पितर शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है क) व्यक्ति के पूर्व के तीन मृत पूर्वज ख), मानव जाति के आरम्भिक अथवा प्राचीनतम पूर्वज, जो एक पृथक् लोक के अधिवासी के रूप में कल्पित हैं[3] । ऋग्वेद में इस पितृ शब्द का एकवचन, द्विवचन और बहुवचन तीनों में प्रयोग हुआ है । पितृ शब्द का प्रथमा के बहुवचन में पितरः रूप बनता है । पितर शब्द का अर्थ पिताओं के अतिरिक्त किसी व्यक्ति के मृत पूर्वजों के लिए भी होता है । विद्वानों के द्वारा किए गये पितरः शब्द के अर्थ को सम्मुख रखते हुए निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि पितृ शब्द के पितरः रूप में दो अर्थ हो सकते हैं, एक के अनुसार किसी व्यक्ति के पूर्वगत तीन मृतपूर्वज पिता, पितामह तथा प्रपितामह का ग्रहण होता है तथा दूसरे के अनुसार मानव जाति के आरम्भिक या प्राचीनतम पूर्वजों का बोध होता है जिनका अधिष्ठान एक पृथक् लोक माना जाता है । ऋग्वेद में द्वितीय अर्थ ही विशेष रूप से दिखाई देता है वहां यह किसी व्यक्ति के पितरों के अर्थ में नहीं अपितु जातीय पितरों के अर्थ में है । प्राय: सभी विद्वानों ने पितर: शब्द का उपर्युक्त अर्थ ही किया है परन्तु

१- Williams, M., Sanskrit English Dictionary, P. 626

२- Macdonell, A.A., V.M. P.70

३- Kane, P.V., H.D. Vol. IV. P. 340

स्वामी दयानन्द का अर्थ इन से भिन्न है। उन्होंने पितर: शब्द का अर्थ जीवित माता-पिता, पितामह आदि लिया है तथा वानप्रस्थ रूप में उन के रहने के स्थानों (आश्रमों) को पितृलोक माना है[1]। वैदिकोत्तर काल में दैनिक क्रियाओं में तर्पण के लिए पितर: शब्द से पिता, पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमातामह, पितामही, प्रपितामही, मातामही, प्रमातामही, वृद्धा प्रमातामही का भी ग्रहण होता रहा है[2]। इस प्रकार परवर्ती साहित्य में पितर: शब्द का प्रयोग किसी व्यक्ति के निकटवर्ती तीन पूर्वजों के अर्थ में होने लगा किन्तु ऋग्वेद में सामान्यतया मानव जाति के आदिम या प्रथम पूर्वजों का और प्राचीन ऋषियों का ही ग्रहण हुआ है। सम्भवत: पितर: शब्द का विस्तृत अर्थ भारत-यूरोपीय और भारत ईरानी काल से चला आ रहा है क्योंकि अवेस्ता में वर्णित फ्रवाशी शब्द मूलत: पितरों के समान ही अर्थ रखता है[3]। प्राचीन पारसी लेखों में फ्रवाशियों (Fravashis) के विषय में चर्चा मिलती है कि आरम्भिक रूप में प्राचीन हिन्दु ग्रन्थों में प्रयुक्त जो 'पितृ' अथवा प्राचीन रोमवासियों का 'मैनस' (Manes)शब्द है वे मृत लोगों के अमर एवं अधिष्ठाता देवता थे। क्रमश: 'फ्रवशी' का अर्थ विस्तृत हो गया और उस में देवता तथा पृथिवी एवं आकाश जैसी वस्तुओं को भी सम्मिलित कर लिया गया अर्थात् प्रत्येक में फ्रवशी मान लिया गया[4]। अतएव पितर शब्द से तात्पर्य उन प्राचीन पूर्वजों से है जो कि पितृलोक में रहते हैं।

विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त पितर शब्द

पितृ शब्द जिस का अर्थ पिता है, वैदिक साहित्य में इस के अतिरिक्त

१- द्र०, दयानन्द, ऋग्वेद भाष्य भूमिका- पितृयज्ञविषय:

२- दैनिक तर्पण करते हुए इन सब का ही आह्वान करने का विधान है।
Vasu, S.C.: The Daily Practis s of Hindus, P.24-26.

३- Avesta, S.B.E. Vol. IV. P.262

४- Quoted by Kane, P.V., H.D. Vol. IV. P.341

भी अन्य अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यथा द्यौ को पिता तथा पृथिवी को माता कहे जाने का उल्लेख मिलता है[1]। पर्जन्य[2], प्राण[3] तथा सूर्य को भी पिता कहा गया है[4]। एवं पितर शब्द भी पूर्वजों के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ मिलता है।

ज्ञानी जन अर्थ में

ऋषि पितरों से प्रार्थना करते हुए उन से अग्नि, सूर्य, उषा तथा जलों के विषय में प्रश्न करता है कि वे कितने हैं अपने को अज्ञानी समझ कर क्रान्तदर्शी ज्ञानी पितरों से यह बात कही है[5]। इस प्रकार यहां पितरों के लिए ' कवय: पितर: ' शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो उन्हें ज्ञानी जन दर्शाते हैं।

सभासद अर्थ में

प्रजापति की दो दुहिताएं सभा और समिति से रक्षा करने के लिए तथा पितरों से जो कि सभासद के रूप में हैं उन से भी मधुरभाषण के लिए याचना किये जाने का उल्लेख मिलता है[6]।

सैनिक अर्थ में

पितरों को शत्रुओं के अन्न को नष्ट करने वाला, अन्नदायक, विपत्ति के समय आश्रय देने वाला कहा गया है। तथा पितर शक्तिमान् गम्भीर, विचित्र सेना से युक्त,

---

१- द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्॥ ऋ० १.१६४.३३.
यास्क, नि० ४.२१.

२- पर्जन्य पिता स उन: पिपर्तु:। अथर्व० १२.१.१२.

३- प्राणो वै पिता। ऐ० ब्रा० २.३८.

४- एष वै पिता य एष (सूर्य:) तपति। मा० ब्रा० १४.१.४.१५.

५- कत्यग्नय: कति सूर्यास: कत्युषास: कत्युस्विदाप:। नोपस्पिजं व: पितरो वदामि पृच्छामि व: कवयो विद्मने कम्। ऋ० १०.८८.१८.

६- सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। येना संगच्छा उप मा स [illegible] चारु वदानि पि[illegible]: संगते [illegible]। अथर्व० ७ १२ १

वाणों से युद्ध करने वाले, अहिंसक, वीर, महान् तथा शत्रुओं पर विजय पाने की सामर्थ्य रखते हैं [1]। इस प्रकार यहां पितरों को एक महान् योद्धा के रूप में दर्शाया है। वास्तव में इस मन्त्र का देवता रथागोपा पितर है। अत: प्रकरणवश इस मन्त्र में जो पितर शब्द है वह सेनानायक जनों का अर्थ रखता है [2]।

हिंसा अर्थ में

ऋग्वेद में पितर शब्द हिंसा अर्थ में भी आया है। देवों से शत्रुता करने वाले असुरों का इन्द्राग्नि द्वारा नष्ट हो जाने का उल्लेख मिलता है [3]। यहां पितर शब्द को सातवलेकर ने " पियति हिंसा कर्मा' धातु से माना है क्योंकि यह देवशत्रु का विशेषण है [4]।

रक्षक अर्थ में

जैसा कि पितृ शब्द का अर्थ रक्षा करना है। ऋग्वेद [5] में मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानी गई है, इसी बीच पुत्र गण पिता (पालन करने वाले) बन जाते हैं। (देवताओं से पूर्ण आयु तक जीवित रहने की प्रार्थना की गई) द्यावापृथिवी देवों और मनुष्यों का भरण-पोषण करते हैं तथा पालक देवताओं के साथ मिल कर जल को क्षरित करते हैं [6]। उक्त स्थल पर यास्क ने पितृ का रक्षा करना अर्थ करके

१- स्वादुषंसद: पितर: वयोधा: कृच्छ्रेश्रिता: शक्तीवन्तो गभीरा: ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्रा: सतोवीरा उरवो व्रातसाहा: । ऋ० ६.७५.६, मा० सं० २६.४६., तै० सं० ४.६.६.३.

२- प्रियरत्न, यम-पितृ परिचय, पृ० ८

३- हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ।। ऋ० ६.५६.१.

४- सातवलेकर, अथर्व० १८ वां काण्ड, सुबोध भाष्य पृ० २४७ मंगलदेव, यम और पितर, पृ० ४३.

५- शतमिन्नु शरदो - - - - - । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति ------ ।
ऋ० १.८९.९., यजु० २५.२२.

६- उभे बिभृत उभयं भरीमभि: पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चत: ।। ऋ० १०.६४.१४.

पितर: शब्द को भी बहुवचन में पालन करने वाले माना है[1] ।

इषु अर्थ में

पितरों को इन्द्र के बाण कहा गया है तथा इन बाण रूप पितरों को नमस्कार करने का उल्लेख मिलता है[2] । पितरों को बाण इसलिए कहा गया है क्योंकि वे हमारी रक्षा करते हैं ।

ऋतु अर्थ में

यजुर्वेद में छः ऋतुएं मान कर इन ऋतुरूपी पितरों को नमस्कार किया गया है[3] । शतपथ ब्राह्मण में भी इन ऋतुओं को नमस्कार करके स्पष्ट रूप से इन ऋतुओं को पितर बतलाया गया है[4] । इस के अतिरिक्त अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इन ऋतुओं को पितर कहे जाने का वर्णन मिलता है[5] ।

सूर्य-किरण अर्थ में

ऋग्वेद में तथा सामवेद में पितर शब्द सूर्य-किरण अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है[6] । इस स्थल पर कहा गया है कि मनुष्य को देखने वाली सूर्य-किरणें हैं,

---

१- 'पिता पाता वा पालयिता वा' बहुवचने 'पितर: पातारो वा पालयितारो वा' नि० ४.२१.

२- इन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषव: । अथर्व० ३.२७.२.

३- वा० सं० २.३२.काण्व सं० २.५७.

४- मा० ब्रा० २.४.२.२४, २.६.१.४., २.६.१.३२, ६.४.३.८.

५- तै० ब्रा० १.४.१०.८. , १.३.१०.५., कौ० ब्रा० ५.७. , गो० उ० १.२४.६.१५

६- अरूचदुषस: पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयु: । मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षस: पितरो गर्भमा दधु: ।। ऋ० ६.८.३.३.
सामवेद में उक्षा बिभर्ति के स्थान पर उक्षा मिमेति भुवनेषु मिलता है ।
जै० सं० २.५.१०, ३.२०.११., कौथुम सं० २.२२७

यही ओषधियों को गुणशाली बनाती हैं। सायण[१] तथा दयानन्द[२] ने भी पितर शब्द का सूर्य-किरणें अर्थ करते हुए उन्हें जगत् की रक्षा करने वाले कहा गया है।

पितरों का स्वरूप

ऋग्वैदिक पितरों का स्वरूप

जैसा कि पूर्ववर्णित तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पितर एक विशेष व्यक्ति के पूर्वज न हो कर समस्त मानव जाति के पूर्वज हैं जो कि सर्वप्रथम मृत्यु को प्राप्त हुए यम के द्वारा ढूंढे गए मार्ग का अनुसरण करते हुए दूसरे लोक (यमलोक) को गए[३]। इन प्राचीन और अर्वाचीन पितरों को नमस्कार करने का विधान मिलता है[४]। इन पितरों को उत्कृष्ट, मध्यम तथा निकृष्ट तीन प्रकार के माना गया है तथा यज्ञ ज्ञाता हैं एवं आह्वान किये जाने पर रक्षा करते हैं[५]। संहिताओं में सोमवन्त, बर्हिषद तथा अग्निष्वात्त तीन प्रकार के पितरों का विवरण मिलता है जिन की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों में की गई है[६]। यज्ञ के द्वारा इन पितरों ने देवताओं की मैत्री तथा अमृतत्व को प्राप्त किया[७]। इन का अग्नि[८]

१- पितर: पालका देवा: पितरो जगद्रक्षका रश्मय: ।। सायण भाष्य ऋ० ६.८३.३.

२- द्र० दयानन्द भाष्य ऋ० ६.८३.३.

३- ऋ० १०.१४.२., अथर्व० १८.१.५०.

४- इदं पितृभ्यो नमोऽस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयु: । ऋ० १०.१५.२.

५- ऋ० १०.१५.१., यजु० १६.४६., अथर्व० १८.१.४४., मै० सं० ४.१०.१४४.

६- ऋ० १०.१४.४, ११, वा० सं० १६.५५, ५६, काठक सं० २१.६६,२१.६३, मै० सं० ४.१०.१४३, ४.१०.१३६., तै० सं० २.६.१२.२., १.८.५.१., अथर्व० १८.३.४४., १८.१.५१., माश० ब्रा० २.६.१.४-५, ७ काश० ब्रा० १.६.१.३-४.६, तै० ब्रा० २.६.१६.१.

७- ऋ० १०.६२.१.

८- ऋ० १.३१.१७, १०.१६.६-११, वा० सं० १६.६५, तै० सं० २.६.१२.४. ऋ० १०.१५.१०, १२, १०.१६.१२, १०.१५.८-६.

तथा इन्द्र[1] के साथ विशेष सम्बन्ध है तथा इन पितरों ने उषा को उत्पन्न करने के लिए अग्नि की उपासना से प्राप्त शक्ति द्वारा अन्धकार को दूर करके सूर्य के प्रकाश को प्राप्त किया[2]। द्युलोक को नक्षत्रों से सुसज्जित करके प्रकाश को दिवस के लिए तथा अन्धकार को रात्रि के लिए नियत किया[3]। बादलों को (पणि नाम असुरों को) नष्ट करके उन में छिपे हुए दिन, ज्योति रूप सूर्य तथा किरणों को प्राप्त किया[4]। तथा यह पितर अपनी प्रजा को उत्पन्न करके उस में पैतृक-तेज एवं बल को स्थापित करके वंश को चिरस्थायी करते हैं[5]। दीर्घायु देना व प्रत्येक को उस की पूर्णावस्था तक पहुंचाना पितरों का ही कार्य समझा जाता है। इसी लिये उन से दीर्घायु तथा पूर्णावस्था तक पहुंचाने के लिए प्रार्थना किये जाने का वर्णन मिलता है[6]। पितर लोक में यह यम के साथ आनन्दपूर्वक रहते हैं[7]। देवताओं की ही भान्ति पितर लोग भी सोमपान करने के इच्छुक हैं तथा आह्वान करने पर कुशा पर बैठ कर सोमरस का सेवन करते हैं[8] तथा यम एवं अग्नि के साथ हविषग्रहण करने के लिए[9] इन्द्र के साथ ही उस के रथ पर आरूढ़ हो कर यज्ञ-स्थल पर आते हैं[10]। इस प्रकार ऋग्वेद में

१- ऋ० ८.१४.८., २.११.२०,१०.१५.१०, १०.६२.१., १०.१०८.१०.

२- ऋ० ४.१.१३, ७.७६.४. (३)-वही १०.६८.११.

४- वही १.७१.२.

५- ऋ० १०.५६.६.

६- अथर्व० १८.३.१०.

७- यमेन ये सधमादं मदन्ति। ऋ० १०.१४.१०.यहां सायण ने सधमादं का अर्थ सहर्ष किया है।ऋ० १०.१४.१०.सायण भाष्य० तथा मैकडौनल ने उत्तम भोजन अर्थ किया है

८- ऋ० १०.१५.१,५., ६.६७.३६.

९- वही १०.१५.८, ९.

१०- ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः। आग्ने याहि सहस्त्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः। ऋ० १०.१५.१०.

प्राचीन पूर्वज जो कि समस्त जाति के पितर हैं उन का वर्णन मिलता है ।

परवर्ती वैदिक साहित्य में पितरों का स्वरूप

परवर्ती वैदिक साहित्य में भी पितरों का वही स्वरूप तथा अर्थ है जैसा कि ऋग्वेद में प्रयुक्त हुआ है । परन्तु फिर भी कुछ भेद दृष्टिगोचर होता है । वहां पर इस का कुछ विकसित रूप मिलता है । ऋग्वेद में पितर जातीय थे किसी व्यक्ति की मृतात्मा से उन का सम्बन्ध नहीं था किन्तु अथर्ववेद में जीवित व्यक्ति से तीन पूर्व पितरों अर्थात् पिता, पितामह, तथा प्रपितामह का उल्लेख मिलता है[१] । ये पितर विस्तृत अन्तरिक्ष, पृथिवी और द्युलोक में रहते हैं[२] । इस प्रकार इन को तीनों लोकों में रहने वाला मान कर इन तीनों ही प्रकार के पितरों को स्वधा दिये जाने का विधान मिलता है[३] । कई बार दस्यु लोग भी पितरों से मिल कर दिए जाने वाले अन्न का भक्षण कर लेते हैं, जो कि पुत्र-पौत्रों का हरण करने वाले हैं, इन दस्युओं को अग्नि यज्ञ से दूर भगा देता है[४] । उक्त उद्धरण से प्रतीत होता है कि पितरों की अग्नि के साथ मैत्री होने के कारण यह अग्नि पितरों के शत्रु इन दस्युओं को दूर भगा देता है, तथा पितरों को पूर्णतया हवि का भक्षण करने के लिए उन की रक्षा करता है । पितरों के लिए राजसभा के सभासद[५] इषु(बाण)[६] और ऋतु[७] अर्थ प्रयुक्त हुआ है । इस के अतिरिक्त इन्हें रात्रि[८] अन्धकार[९] मन[१०] इन्दु[११] और

१- ये न: पितु: पितरो ये पितामहा: य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् । अथर्व० १८.२.४९.

२- अथर्व० १८.४.७८-७९, १८.३.८,५९, १८.४.८०, १८.२.४८., १८.१.६१, १८.२.४९.

३- अथर्व० १८.४.७८-८०. (४) वही १८.२.२८. (५) अथर्व० ७.१२.१.

६- शौ० सं० ३.२७.२., पै० सं० ३.२४.२.

७- वा० सं० २.३२., का० सं० २.५७, माश ब्रा० २.४.२.२४, २.६.१.४. ,२.६.१.३२ कौ० ब्रा० ५.७., गो० ब्रा० २.६.१५., तै० ब्रा० १.४.१०.८, १.३.१०.५.

८- रात्रि: पितर: । माश० ब्रा० २.१.३.१.

९- तिर इव वै पितर: । मा० श० ब्रा० २.६.१.१९, २.४.२.२०, १३.८.३.२., १३.८.३.८.

१०- मन: पितर: । माश० ब्रा० १४.४.३.१३, बृ० आ० उ० १.५.६.

११- इन्दव हि पितर: ।मन इव । तां० महा० ब्रा० ६.९.१९.२०.

प्रजापति[1] भी कहा गया है, तथा ओषधिलोक को भी पितर कहा गया है और इन्हीं ओषधियों के मूल में यह पितर छिपे रहते हैं[2]। तथा यह मूल वाली भूमि पितरों की ही कहलाती है[3]। पितरों को ह्लीका[4] तथा अग्निमुख भी कहा गया है वे अग्निमुख हो कर ही पितृलोक से जीवलोक में आते हैं[5] मनुष्य जागते हैं तथा पितर सोते हैं[6] ये पितर सोम[7] कूप[8] नीवि तथा घरों के देवता माने गए हैं[9]। नीवि एक वस्त्र माना जाता है। यह एक [illegible] कहा जाता था जिसे कि स्त्रीपुरुष सभी पहनते थे[10] तथा ऐगलिंग (Eggeling) ने इसे बिना सिला हुआ कपड़ा माना है जो कि कमर की समाप्ति पर नीचे को बांधा जाता है तथा हिन्दी में जिसे धोती कहते हैं[11]। इन पितरों के लिए प्रत्येक मास में कृत्य किये जाते हैं, स्वधा उन का भोजन है, मन के समान उन का वेग तथा चन्द्रमा उनकी ज्योति है[12]। पितरों का देवताओं के साथ जो साहचर्य है वह इस बात का सूचक है कि पितरों में भी देवताओं की तरह मनुष्यों को इष्ट सहायता देने की शक्ति है[13] तथा देवताओं की तरह इन्हें

१- पितर: प्रजापति। गो० ब्रा० २.६.१५.

२- ओषधिलोको वै पितरऽओषधीनाᳬ हमूलान्युपसर्पन्ति। माश० ब्रा० १३.८.१.२०.

३- समूलᳬ हि पितृणां। माश० ब्रा० १३.८.१.१५., ...,
काश ब्रा० १.६.१.११. मा० श० ब्रा० २.६.८.७

४- ह्लीका हि पितर:। तै० ब्रा० १.६.६.७. लज्जाशीला: पितर:, भट्टभास्करभाष्य पृ० ३५०.

५- माश० ब्रा० १३.८.४-६.(६) मनुष्य वै जागरितं पितर: सुप्तम्। माश ब्रा० १२.६.
२.२. (७)- पितृदेवत्य: सोम:। माश० ब्रा० ३.२.३.१७.

८- पितृदेवत्यो वै कूप: खात:। माश० ब्रा० ३.६.१.१३.

९- पितृदेवत्या वैनीवि- - - - -गृहा पितर ईशत। माश० ब्रा० २.४.२.२४.

१०- सूर्यकान्त, वैदिक कोश, पृ० २५० . . . . .

११- Eggeling's Translation Śatapatha Brāhmaṇa. 2.4.2.24

१२- माश० ब्रा० २.४.२.२.

१३- . . Keith, RPVU (Harvard Oriental series Vol.32). Part II. Chapter 25,P.425

सोम-प्रिय है । इसी का पान करके ही पणियों द्वारा अपहृत गौओं को, जिन्हें शिलासमूह में छिपाया गया था, सोम के तेज से ढूंढ निकाला[१] । पितरों को स्वधा के द्वारा जीवित रहने वाला माना गया है[२] । तथा सोम पितरों का देवता है[३] पितरों को मनुष्यवर्ग में नहीं लिया जा सकता । इन का भिन्न ही वर्ग है तथा इन की रचना भी मनुष्यों से पृथक् ही हुई थी[४] ।

पितरों की दक्षिण दिशा

वैदिक संहिताओं में वर्णन आता है कि देवताओं तथा पितरों ने दिशाएं बांट ली । देवताओं ने पूर्व दिशा तथा पितरों ने दक्षिण दिशा को प्राप्त किया[५] । पितरों को दक्षिण दिशा के रक्षक मान कर उन से उस दिशा की ओर से विघ्नों को दूर करने के लिए तथा रक्षा के लिए प्रार्थना किये जाने का उल्लेख मिलता है[६] । जैसा कि पहले भी कह चुके हैं कि यम की दक्षिण दिशा है[७] तथा पितर भी यम के राज्य में रहते हैं । अत: यह सिद्ध हो जाता है कि पितरों की भी दक्षिण दिशा ही है । शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख आया है कि कुछ लोग वेदि के दक्षिण को अभिषेक करते हैं । अन्न जो कि दाहिनी ओर से परोसा जाता है वे उस अन्न की ओर से अभिषेक करते हैं । परन्तु

१- ऋ० ९.९७.३९., जै० सं० ३.५८.६ सामवेद उत्तरार्चिक १३५९

२- स्वधाकारं पितर: (उपजीवन्ति) माश० ब्रा० १४.८.९.१. बृ० आ० उ० ५.८.१.

३- स्वधाकारो हि पितृणाम् । तै० ब्रा० १.६.९.५., ३.३.६.४.

३- सोमो वै पितृणां देवता । काठक सं० ३६.१३., मै० सं० १.१०.१८. तै० ब्रा० १.६.९

४- तदनु पितॄनसृजत । तत्पितृणां पितृत्वम् । स पितॄन्त्सृष्ट्वाऽमनस्यत् । तदनु मनुष्यान सृजत । तै० ब्रा० २.३.८.२.

५- तै० सं० ६.१.१.१., काठक सं० २३.१., कपि० सं० ३५.७., मै० सं० २.६.१.३.

६- मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणत: पातु । वा० सं० ५.११, काठक सं० ५.१५. तै० सं० ५.५.९-१०.४., कपि० सं० २.३., काठ० सं० २.९., मै० सं० १.२.८.

७- अथर्व० ९.७.२०., माश० ब्रा० १४.६.९.२२., बृ० आ० उ० ३.९.२१.

८- वा० सं० १९.४५.

ऐसा नहीं करना चाहिए क्योंकि यह दिशा पितरों की है । ऐसा करने से मनुष्य शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हो जाता है[1]। इस के अतिरिक्त भी इसी ब्राह्मण में अन्य स्थलों पर भी पितरों को दक्षिण दिशा में ही माना गया है[2]। इस के साथ-साथ पितरों को अवान्तर दिशाओं (मध्यवर्ती) में भी कहा जाता है[3]। तथा पितरों को सभी दिशाओं में व्याप्त माना गया है[4]। वास्तव में पितरों की दिशा दक्षिण ही मानी जाती है[5] क्योंकि पितृलोक दक्षिण दिशा में स्थित है[6]।

पितृ-स्वधा

पितरों के लिए स्वधा का विशेष महत्त्व है तथा इसी से पितर आनन्दित रहते हैं। तो यह स्वधा क्या है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। स्वधा शब्द स्व+धा धातु से निष्पन्न माना जाता है जिस का अर्थ है अपनी धारक-शक्ति। किन्तु कुछ स्थलों पर पितरों को दिए जाने वाले भोज्यादि पदार्थों के लिए भी स्वधा शब्द प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में जहां कहीं स्वधा शब्द आया है वहां ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्राय: अपनी धारक शक्ति अथवा अपनी इच्छा से इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[7]। पितरों को यह शक्ति इस लोक में जीवित व्यक्तियों द्वारा जो उपहार (अन्न, पेय आदि) दिए जाते हैं उन से प्राप्त होती है। परन्तु यहां व्यक्तिगत पितरों की बात हो जाती है। ऐसा माना जाता है कि अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में पितरों को देय पदार्थों को स्वधा नाम से पुकारा गया है। स्वधा शब्द की दो परिस्थितियां मानी गई हैं। एक अव्यय की तथा दूसरी नाम वाचकता की। यदि स्वधा शब्द स्वस्ति, स्वधा, ओम् (स्वरादिगण-गणपाठ) में पढ़ा हुआ हो तो इस की

१- मा०श० ब्रा० ६.३.४.११.

२- दक्षिणां दिश ७४ सचन्तऽएषा हि दिक् पितृणां । मा०श० ब्रा० २.६.१.६.

३- अवान्तरदिशो वै पितर: । मा०श० ब्रा० १.८.१.४०, २.६.१.१०.

४- सर्वासु दिक्षु पितर: । काठक सं० ३.६.१२, तै० ब्रा० १.६.८.५, भट्टभास्कर भाष्य मा०श० ब्रा० २.६.१.११.

५- ष० ब्रा० ३.१. (६)-मा०श० ब्रा० १२.७.३.७. दक्षिण: पितृलोक: ।

७- स्वधया मदन्ति । ऋ० १०.१४.३,७.

परिस्थिति अव्यय की है । तथा नामवाचक परिस्थिति में (उणादि ४.७५) से स्वद आस्वादने से तथा 'आतोऽनुपसर्गे कः' (अष्टा० ३.२.३) से स्वधा शब्द सिद्ध होता है[१] । अष्टाध्यायी में स्वधा का अर्थ उपहार, भेंट, समर्पण ऐसा सिद्ध होता है[२] । निघण्टु में स्वधा का विभिन्न अर्थ वाले शब्दों के साथ पाठ किया है । तदनुसार स्वधा का अर्थ अन्न किया गया है । निरुक्त में भी स्वधा शब्द जल तथा स्वधे शब्द द्यावापृथिवी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[३]। इसी को आधार मान कर स्वामी दयानन्द ने भी स्वधा, स्वधया स्वधाये शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ किए हैं[४]। स्वधा शब्द का अर्थ स्वधारण-शक्ति, प्रकृति-स्वभाव भी है[५] । जिस का प्रमाण ऋग्वेद में मिलता है[६] सायण के अनुसार स्वधा शब्द का अर्थ अन्न है । स्वधा ही अन्न है अथवा स्वधा शब्द के साथ दिया हुआ अन्न स्वधा कहलाता है[७] । तथा ऋग्वेद के एक मन्त्र (४.२३.५) में स्वधया का अर्थ 'बलेन' भी मिलता है तथा सायण ने यह माना है कि स्वधा शब्द प्रसंग के अनुसार ही अन्नसम्बन्धी तादात्विक अर्थ ग्रहण करता है[८] । सातवलेकर ने स्वधा को

१- तु० की० प्रियरत्न आर्ष, यम-पितृ परिचय पृ० १०.

२- नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च । इस सूत्र से नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वषट् ये छः शब्द अव्यय हैं । जिस के लिए इन का विनियोग होता है वहां चतुर्थी विभक्ति हो जाती है यथा अग्नये स्वाहा, स्वधा पितृभ्यः । पाणिनि अष्टा० २.३.१६.

३- स्वधा अन्ननाम् । निघण्टु २.७.
स्वधा उदकनाम् । निघ० १.१२.स्वधे द्यावापृथिवी (नि० ३.३०)

४- दयानन्द, यजुर्वेद भाष्य २.३२, १६.३६ ऋ० भाष्य १०.१४.५,१०.१४.७.

५- आतोऽनुपसर्गे कः (अष्टा० ३.२.३) 'स्वं दधातीति स्वधा। प्रियरत्न, यम पितृ परिचय पृ०. २२.

६- आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिये । दधाना नाम यज्ञियम् । ऋ० १.६.४.
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनि । ऋ० १.१६४.३८, अथर्व० ९.१०.१६.

७- स्वधा अन्नं स्वधाकारेण वा दत्तमन्नम् । ऋ० ६.१२३.१०. पर सायण भाष्य

८- स्वधा शब्दो अन्नवाची अत्र तत्कार्यं बलं लक्षयति । सायण भाष्य, ऋ० ४.१३.५

पितरों के अन्न का विशेष नाम माना है[१]। मैक्समूलर ने स्वधा शब्द का अर्थ पहले निज-स्थान मान कर बाद में इसे व्यक्ति का निजी स्वभाव कहा है[२]। ग्रिफिथ ने स्वधा का अर्थ अन्न ही किया है[३] तथा ग्रिसवोल्ड ने स्वधा का अर्थ स्वाभाविक शक्ति माना है[४]। एक फ्रांसीसी विद्वान् के अनुसार भी स्वधा का अर्थ अन्न ही है[५]। उक्त व्याख्याओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि स्वधा का अर्थ अन्न ही है अथवा वह अन्न जो कि स्वधा शब्द के साथ उन्हें (पितरों को) प्रदान किया जाता है तथा जो अन्न पितरों को पुष्टि प्रदान करता है। जैसा कि अथर्ववेद में वर्णन मिलता है कि स्वधा के द्वारा ही पितर लोग शक्ति प्राप्त करते हैं[६]। ऋग्वेद के अनुसार देवता स्वाहा से तथा पितर स्वधा से आनन्दित होते हैं[७] तथा यजुर्वेद में एक मन्त्र आया है कि पितरों का स्वभाव स्वधा (शक्ति देने वाला अन्न) खाने का है उसी को खा कर वे आनन्दित होते हैं, तृप्त होते हैं तथा शुद्धता को धारण करते हैं[८]। यहां पर स्पष्टतया जीवित व्यक्ति के तीन पूर्वजों का उल्लेख मिलता है। जिन्हें यह स्वधा प्रदान की जाती है। अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी पितरों के देय पदार्थ को स्वधा नाम से पुकारा गया

१- सातवलेकर, अथर्ववेद १८ वां काण्ड, सुबोध भाष्य पृ० २२० तथा पृ० २२२ पर अथर्व० ७.४१.२. में स्वधावत् का अर्थ " आत्म धारण शक्ति " माना है। तु० को० मंगलदेव, यम और पितर, पृ० १८.

२- Max. Muller F. Vedic Hymns Part I. P.35

३- Griffith; Hymns of the Atharvaveda, P.422

४- Griswold H.D.; The Religion of the Veda, P.321 in the F.N.

५- Louis Renou, Vedic India P.80

६- तां स्वधां पितर उपजीवन्ति। अथर्व० ८.१३.८.

७- ऋ० १०.१४.३.

८- पितृभ्य: स्वधायिभ्य: स्वधा नम:। पितामहेभ्य:----------। प्रपितामहेभ्य: ------। अक्षन् पितरोऽमीमदन्त। पितरोऽतीतृपन्त पितर:। पितर: शुन्धध्वम्। वा० सं० १९.३६.का० सं० २१.३६.

है और पितरों को वे पदार्थ देते हुए स्वधा शब्द का उच्चारण किया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि सम्भवत: इस के मूल में यह भाव रहा हो कि जो भोज्य-आदि पदार्थ हम पितरों को दे रहे हैं वे पितरों के लिए स्वधा (निज धारक शक्ति) बन जाएं[1]। अथर्ववेद में प्रपितामह, पितामह तथा पिता इन तीनों के नाम पर अलग-अलग स्वधा देने का विधान मिलता है[2]। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इन तीनों को अलग-अलग स्वधा किए जाने का वर्णन आया है[3]। इस के अतिरिक्त पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक तीनों स्थानों पर रहने वाले पितरों को भी स्वधा देने का उल्लेख मिलता है[4]। यजुर्वेद में जो यम के राज्य में समान तथा एक विचार वाले पितर रहते हैं उन के लिए स्वधा व नमस्कार किया गया है[5] जहां उव्वट ने इस मन्त्र की व्याख्या में उस भोजन (अन्न) को स्वधा कहा है जो कि पितरों को अर्पित किया जाता है तथा इसी अर्थ को महीधर ने भी माना है[6]। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया

१- कैलाशचन्द्र, पितृपूजा, पृ० १०८.

२- एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु। एतत् ते ततामह-एतत्ते तत स्वधा। अथर्व० १८.४.७६-७८. यहां तत् शब्द पितृवाचक है। ऐतरेयारण्यक इस में प्रमाण है-एतां वाव प्रजापति: प्रथमां वाचं व्याहरद् एकाक्षर द्व्यक्षरां ततेति तातेति। तथैवेतत् ततवत्या वाचा प्रति पद्यते। ऐआ० १.३.३. आश्वलायन ने भी अपने पितरों का नाम न जानता हुआ पुत्र, तत् शब्द का प्रयोग करे, इस आशय वाला सूत्र बनाया है-नामान्यविद्वांस्तत पितामहप्रपिता महेति। आ० गृ० सू० २.६.

३- पितृभ्य: स्वधायिभ्य: स्वधा नम इति। पितृनेव पितृलोके स्वधायांदधाति पितामहे- - - - - -। प्रपितामहेभ्य: - - - -दधाति। माश ब्रा० १३.८.१.७. तै० ब्रा० २.६.३.२.

४- अथर्व० १८.४.७८-८०. (५) यजु० १६.४५.तु० की० श्रा० उ० २.६.८.

६- उव्वट, महीधर भाष्य, यजु० १६.४५.

गया है कि स्वधा पितरों का अन्न है[१] । यहां पर स्वधा को शरद् ऋतु भी कहा है[२] । शरद् ऋतु पितरों की ही मानी गई है । क्योंकि दक्षिणायन में ही शरद् ऋतु होती है जो कि पितरों का आयन माना गया है । इस में सूर्य पितरों की रक्षा करता है और पोषण करता है[३] । इस प्रकार पितरों को इस ऋतु में शक्ति प्राप्त होती है । अत: यह ऋतु ही स्वधा नाम से कही जाने लगी[४] । पितरों के लिए अक्षय स्वधा को दिया गया है[५] । राजा के कर्त्तव्यों में यह बताया गया है कि पितरों को स्वधा देने से देवों के लिए यज्ञ करने से तथा दान करने से वशा माता (पृथिवी) क्रुद्ध नहीं होती[६] । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि पितरों को स्वधा न दी जाए तो वशा (पृथिवी) क्रोधित हो जाती है जिससे मनुष्य का अनर्थ होता है । अथर्ववेद के अनुसार यहां पितर को स्वधा से शक्ति प्राप्त होती है वहां पर उस स्वधा को देने वाला भी उपजीवन के योग्य हो जाता है[७] । इस प्रकार स्वधा देने से पितरों को तो लाभ पहुंचता ही है । इस के साथ-साथ स्वधा देने वाले को भी लाभ होता है । पितरों

१- स्वधा वै पितृणामन्नम् ।। मा० श० ब्रा० १३.८.१.४.

२- स्वधा वै शरद् । वही १३.८.१.४.

३- श० ब्रा० २.१.३.३.

४- जैसा कि स्वधा का अर्थ अन्न ही अधिक महत्त्व रखता है । इस स्वधा को देने से पितरों को शक्ति प्राप्त होती है । तो जब शरद् ऋतु दक्षिणायन में सूर्य पितरों की रक्षा करता है । जिससे उन्हें शक्ति प्राप्त होती है । यही शरद् ऋतु पितरों के लिए स्वधा है जो कि उन्हें शक्ति धारण कराती है ।

५- स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि । अथर्व १२.२.३२.

६- स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्य: । दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति । अथर्व० १२.४.३२. यहां वशा माता पृथिवी के लिए ही प्रयुक्त हुआ है । जैसा कि द्यौ को पिता तथा पृथिवी को माता कहा जाता है ।

७- तां स्वधां पितर उपजीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद । अथर्व० ८.१०.८.

को स्वधा देने के साथ-साथ उन्हें नमस्कार करने का विधान भी मिलता है[1]। प्राचीन और अर्वाचीन पितरों को जो कि पृथिवी लोक पर स्थित हैं। उन सब को नमस्कार किये जाने का उल्लेख मिलता है[2]। इस के अतिरिक्त यम तथा पितरों को इकट्ठे नमस्कार किया गया है[3]।

पितरों की उत्पत्ति

वैदिक साहित्य में पितरों की उत्पत्ति सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। उन की उत्पत्ति साधारण मनुष्य की भान्ति नहीं वलिक अन्य देवता, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र आदि की तरह प्रजापति के द्वारा हुई। यजुर्वेद में पितरों की उत्पत्ति इस प्रकार वर्णित है कि प्रजापति ने नव प्राणों से स्तुति की। जिससे पितर उत्पन्न हुए तथा उस में अदिति (प्रजापति की अखंड शक्ति) पत्नी अर्थात् पालन करने वाली थी[4]। इसी की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण ने की है जिस के अनुसार यह नौ प्राण सात सिर में, और दो नीचे हैं। इन से प्रजापति ने स्तुति की जिससे पितर उत्पन्न हुए[5]। अथर्ववेद में वशा को ही अमृत कहा गया है तथा उसे ही मृत्यु मान कर उपासना करते हैं। देवता, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषि ये सब वशा ही है, अन्य जीवों के समान पितरों की उत्पत्ति भी वशा से होती है[6]। यह वशा ईश्वर की ही एक शक्ति है। इसी वेद में उच्छिष्ट रूप परमात्मा से अन्य सब के

१- वा० सं० २.३२., तै० सं० ३.२.५.५-६, अथर्व० १८.४.८१,८२,८५.

२- ऋ० १०.१५.२., यजु० १६.६८., अथर्व० १८.१.४६.

३- अथर्व० १४.२.२०.

४- नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत्। वा० सं० १४.२६.

५- माश० ब्रा० ८.४.३.७.

६- वशामेवामृतमाहुः वशां मृत्युमुपासते। वशेदं सर्वमभवत् देवा मनुष्या असुराः पितरः ऋषयः। अथर्व० १०.१०.२६.

साथ पितरों की उत्पत्ति बताई गई है[१]। उच्छिष्ट भी उसी ईश्वर का नाम है जो कि सृष्टि के आदि तथा अन्त (प्रलय) में अकेला ही बचा रहता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में पितृयज्ञ करने से पूर्व पितरों की उत्पत्ति के विषय में उल्लेख मिलता है कि वृत्रासुर संग्राम में देवताओं ने महाहवि के द्वारा वृत्र को मार डाला और विजय प्राप्त की। किन्तु उस युद्ध, में जो वीर(देवता) वृत्र के द्वारा संग्राम में मारे गए उन को पितृ यज्ञ के द्वारा जिलाया गया वही पितर कहलाते हैं[२]। यह पितृयज्ञ साधारण पितृयज्ञ की भान्ति अमावस्या को किया जाने वाला यज्ञ नहीं यह उस से भिन्न महापितृयज्ञ कहलाता है[३]। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति असुरों की सृष्टि करके अपने आप को पिता समझने लगा। इस प्रकार पितृत्व की वासना से वासित हो कर प्रजापति ने पितरों को बनाया[४]। इसी ब्राह्मण में कहा गया है कि पितरों के पश्चात् मनुष्य तथा अनन्तर देवताओं का सृजन किया गया[५]। अतएव इन उद्धरणों से यही प्रतीत होता है कि पितरों की उत्पत्ति, प्रजापति के द्वारा हुई। यह दृष्टिकोण कुछ-कुछ ईरानी फ्रवाशियों की उत्पत्ति सम्बन्धी, दृष्टिकोण से मिलता है[६]। मनुस्मृति में कहा गया है कि ऋषियों से पितर, पितरों से देव तथा दानव उत्पन्न हुए और देवों के द्वारा यह समस्त चराचर जगत् क्रमश: उत्पन्न हुआ[७]।

१- अथर्व० ११.७.२७.

२- माश० ब्रा० २.६.१.१, का०श०ब्रा० ६.१.१.

३- Eggeling, J., tr. Śatapatha Brāhmaṇa f.n. पितृयज्ञ

४- सोऽसुरान् सृष्ट्वा पितेवामन्यत। तदनु पितॄनसृजत। तत्पितृणां पितृत्वम्। य एवं पितृणां पितृत्वं वेद। पितेव स्वानां भवति ।। तै० ब्रा० २.६.८.२.

५- यन्त्यस्य पितरो हवम्। स पितॄन्थ्सृष्ट्वाऽमनस्यत्। तदनुमनुष्यानसृज्यत - - -। तदनु देवानासृजत। वही २.६.८.३.

६- कैलाशचन्द्र, पितृपूजा, पृ० १०५.

७- ऋषिभ्य: पितरोजाता: पितृभ्यो देवदानवा:। देवैभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वश: ।। मनु० ३.२०१.

काणे के अनुसार मनुस्मृति में जो कहा गया है कि देवगण पितरों से उद्भूत हुए हैं। यह केवल पितरों की प्रशस्ति है अर्थात् एक अर्थवाद है[1]। इस प्रकार यहां पितरों की उत्पत्ति ऋषियों से मानी गई है। तब प्रश्न उठता है कि ये ऋषि कौन हैं? शतपथ ब्राह्मण में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि यह जगत् उत्पत्ति से पूर्व असत् रूप था। तो वह असत् क्या था? ऋषि उस समय असत्स्वरूप थे। वे ऋषि कौन हैं? प्राण ही ऋषि हैं[2]। इन प्राण तत्व स्वरूप ऋषियों से पितृ-प्राण की उत्पत्ति हुई और पितृ-प्राण से देव-दानव उत्पन्न हुए और इन देव-दानवों से जगत् की सृष्टि हुई। इन में सौम्यप्राण पितर हैं। उन के आधार पर होने वाली वसन्त आदि ऋतुएं पितर हैं। प्रति शरीर में रहने वाले सन्तानोत्पादक भाव भी पितर हैं[3]। अतएव पितरों की उत्पत्ति प्रजापति के द्वारा अन्य देवताओं की भान्ति ही हुई।

पितरों की देवताओं से समता एवं भिन्नता

पितरों की देवताओं से समता

वैदिक संहिताओं में पितरों को भी देवताओं की भान्ति सम्मान प्राप्त है। ऋग्वेद में देवताओं के समान उन्हें गौरव प्राप्त है तथा वे देवत्व को प्राप्त हो कर देवों की भान्ति ही व्यवहार करते हैं[4]। देवों के समान ही यह महान् कार्य करते दिखाई देते हैं। इन्होंने आकाश को नक्षत्रों से सुसज्जित किया, तथा प्रकाश को दिवस के लिए एवं अन्धकार को रात्रि के लिए नियत करने का उल्लेख मिलता है[5]।

१- Kane P.V.: H.D. Vol. IV. P.344

२- मा० श० ब्रा० ६.१.१.१.

३- चतुर्वेदी, गिरिधर शर्मा; वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति। पृ० १३६-३७.

४- महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम्। ऋ० १०.५६.४.

५- अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं न नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन्।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विददगाः। वही १०.६८.११.

अंगिरा आदि पितरों ने गूढ (गुह्य) तेज को प्राप्त करके स्तुतियों से उषा को प्रादुर्भूत किया तथा[1] देवताओं के साथ आनन्दित होते हैं और हवि-भक्षण के लिए देवताओं के साथ उन्हीं के रथ पर चढ़ कर यज्ञ स्थल में आते हैं[2] रक्षा करने के लिए उषा, सरित्, पर्वत, द्यावापृथिवी, पूषा, वसु और ऋभुओं के साथ उन का आह्वान किया गया है[3]। इन पितरों ने यज्ञीय द्रव्य के ही द्वारा इन्द्र की मैत्री और अमरत्व को प्राप्त किया[4]। ऐसा प्रतीत होता है कि इन पितरों को यज्ञ के द्वारा अमरत्व प्राप्त हुआ है तथा पहले वे देवताओं की भान्ति अमर न थे। इन पितरों को स्वर्ग के पुत्र[5] तथा देवों के साथ अवस्थित माना गया है[6]। पितरों का विष्णु, मरुत, उषा, सूर्य आदित्यगण, तथा वसुगण के साथ उल्लेख मिलता है[7] तथा देवताओं की भान्ति उन्हें सोम अर्पित किया जाता है[8]। कौषीतकि ब्राह्मण में पितरों को देवता की संज्ञा दी गई है[9]। ब्राह्मण ग्रन्थों[10] तथा आरण्यकों[11] में यहां पंचमहायज्ञ का उल्लेख है वहां देवताओं की भान्ति पितरों के लिए भी यज्ञ करने का विधान है। अत: वहां उन्हें पंचमहायज्ञ में विशेष स्थान प्राप्त है तथा इन की महत्ता देवताओं के ही समान है। जैसा कि कुछ विद्वानों ने इस महत्ता

१- ऋ० ७.७६.४.

२- ऋ० १०.१५.१०.

३- ऋ० ६.५२.४, ७५.१०, ७.३५.१२, १.१०६.३.

४- ऋ० १०.६२.१.

५- ऋ० ३.५३.७, १०.६७.२.

६- ऋ० १०.६२.६.

७- ऋ० ७.४४.४, ८.३५.१४.

८- ऋ० ६.६२.६.

९- देवा वा एते पितर:। कौ० ब्रा० ५.६.

१०- मा० श० ब्रा० ११.५.६.१-२. गो० ब्रा० १.३.३२, १.५.६.

११- तै० आ० २.१०.१२.

को स्वीकार करते हुए कहा है कि इस काल में पितरों का महत्व काफी बढ़ गया था । यद्यपि वे देवता तो नहीं बने थे तथापि देवताओं से समता अवश्य करने लगे थे[१] । उपनिषदों में कहा गया है कि जो पितरों के लिए पिंड, पानी देता है और सन्तान की इच्छा करता है वह पितरों का आश्रय होता है[२] । देवताओं की भान्ति मनुष्य का कल्याण करने के कारण भी उन्हें देवताओं की भान्ति माना जाता है । यथा बर्हिषद और सोमपा पितरों को एक प्रकार से देवतुल्य ही माना गया है । चूंकि उन के आर्शीवाद से उन के वंश का ही नहीं अपितु समस्त मनुष्य जाति का कल्याण होता है[३] । देवताओं के महान् कार्यों में भाग लेने के कारण, उन से देवताओं के समान ही व्यवहार किया गया है तथा उन्हें अमर्त्य माना गया है[४] । इतनी समानताओं के होते हुए, तथा देवताओं जैसी विशेषताओं के रखने पर भी उन्हें दिव्य कोटि में नहीं रखा जा सकता । तथा न ही इन्हें देवता कहा जा सकता है चूंकि केवल याज्ञिक कर्मों के द्वारा यज्ञ करने से ही इन्हें विशेषाधिकार प्राप्त हुए हैं[५] ।

पितरों की देवताओं से भिन्नता

पूर्ववर्णित पितरों की देवताओं से समानता देखते हुए यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि वे देवताओं की भान्ति देवत्व को प्राप्त हो गये थे तथा उन से भी देवताओं जैसा व्यवहार किया जाता था तथापि इन में परस्पर पर्याप्त विभिन्नताएं दृष्टिगोचर होती हैं । ऋग्वेद में देवताओं तथा पितरों को समान रूप से हवि

१- कैलाश चन्द्र, पितृपूजा, प्रथम संस्करण १९७६, पृ० १२२.

२- बृ० उ० १.४.१६.

३- तु० की०, सम्पूर्णानन्द, हिन्दू देवपरिवार का विकास पृ० १०७.

४- तु० की० Renou, Louis, Vedic India P.80

५- द्र० Bergaigne's Vedic Religion tr. by Paranjpe V.G., Poona 1978 Chap. IV P.318

देने का विधान है। यज्ञ में जब पितरों को हविष् प्रदान किया जाता है तो 'स्वधा' शब्द तथा जब देवताओं को हविष् दिया जाता है तो 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग किया जाता है[1]। परवर्ती संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में यह स्वाहा तथा स्वधा का भेद और भी स्पष्ट रूप में मिलता है[2]। ऋग्वेद में पंचजना: शब्द आया है[3]। जिस की ऐतरेय ब्राह्मण ने व्याख्या करते हुए देव, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सराएं तथा पितर ये सभी पृथक् वर्ग के माने हैं[4]। निरुक्त में भी यास्क ने इस पद की निरुक्ति करते हुए इसी व्याख्या के साथ-साथ दूसरी व्याख्या को भी दिया है[5]। अथर्ववेद में भी देवता पितर और मनुष्य का क्रम निश्चित कर दिया गया है[6]। दिशाओं का विभाजन करते हुए देवताओं के द्वारा पूर्व, पितरों के द्वारा दक्षिण, मनुष्यों के द्वारा पश्चिम तथा रुद्रों के द्वारा उत्तर दिशा को प्राप्त किये जाने का उल्लेख मिलता है[7]। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी देव, पितर, मनुष्य, असुर, गन्धर्व आदि का उल्लेख आया है तथा इन के विभाजन के अनुसार ही अपने-अपने अलग लोक हैं[8]।

१- मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधान: ।यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति । ऋ० १०.१४.३., तै० सं० २.६.१२.५. मै० सं० ४.१४.२३३ अथर्व० १८.१.४७.

२- स्वधा कुर्यादोदपात्रात्तथैतं पितृयज्ञ ँ - - - स्वाहा कुर्यादा काष्ठात्तथैतं देवयज्ञ ँ समाप्नोति । मा० श० ब्रा० ११.५.६.१-२.
तै० आ० २.१०.१. तु० की० देवेभ्य: स्वाहाकार आ काष्ठात् पितृभ्य: स्वधाकार ओदपात्रात्- -आप० ध० सू० १.४.१२.१५.

३- ऋ० १०.५३.४-५. (४)- ऐ० ब्रा० ३.३१.

५- नि० ३.८.

६- अथर्व० १०.६.३२.

७- प्राचीनव ँ शं करोति देवमनुष्या दिशो व्यभजन्त । प्राची देवा दक्षिणा पितर: प्रतीची मनुष्य उदीची ँ रुद्रा- - - - - । तै० सं० ६.१.१.१.

८- जै० ब्रा० १.१५४.

पितृयाण तथा देवयाण दो विभिन्न मार्गों का भी वर्णन मिलता है। पितृयान से जाने वाले मृतक पितृलोक तथा देवयान से गमन करने वाले देवलोक को प्राप्त होते हैं[1]। इस के अतिरिक्त जो मनुष्य उत्तरायण (उन छः महीनों में जब कि सूर्य उत्तर की ओर होता है) में शरीर को त्यागता है वह इन्द्रादि देवताओं के ऐश्वर्य को प्राप्त हो कर आदित्य लोक में वास करता है। जब कि दक्षिणायण में मरने वाला पितरों को प्राप्त हो कर चन्द्रलोक में निवास करता है[2]। इस के अतिरिक्त देवताओं का पूर्वाह्न, मनुष्यों का मध्यन्दिन तथा पितरों का अपराह्न काल माना गया है[3]। सामान्य नियम यह है कि देवों के यज्ञ मध्याह्न के पूर्व आरम्भ किये जाते हैं और पितृयज्ञ अपराह्न में आरम्भ किये जाते हैं[4]। इसी प्रकार इन की दिशा में भी अन्तर है। देवों की पूर्व दिशा तथा पितरों की दक्षिण दिशा मानी गई है[5]। तथा इस देवलोक की स्थिति उत्तर में और पितृलोक की स्थिति दक्षिण में है[6]। इस देवलोक की स्थिति ऊपर तथा पितृलोक की स्थिति नीचे मानी गई है[7]। तीन ऋण माने गए हैं जो कि मनुष्य के पैदा होते ही उस पर सवार हो जाते हैं देवता, ऋषि, पितृ। जिनमें से यज्ञ करके देवऋण, ब्रह्मचर्य के द्वारा ऋषि-ऋण, सन्तान उत्पन्न करके पितृ ऋण से छुटकारा मिलता है[8]। शतब्राह्मण ने एक ऋण

१- ऋ० १०.८८.१५., काठक सं० ३८.२(२५), तै० ब्रा० १.४.२.३., माश० ब्रा० १४.९.१.४., बृ० आ० उ० ६.२.३. (२)- तै० आ० १०.६४.१.

३- जै० ब्रा० ३.२७१, पूर्वाह्नो वै देवानां मध्यन्दिनो मनुष्याणां अपराह्णः पितृणां - - - -। मा० श० ब्रा० २.४.२.८., २.१.३.१.क० श० ब्रा० १.१.३.१.

४- शां० ब्रा० ५.६.

५- तै० सं० १.६.५.२., मै० सं० १.४.२., काठ० सं० ५.५.

६- उत्तरो वै देवलोको दक्षिणः पितृलोकः। मा० श० ब्रा० १२.७.३.७.

७- मा० श० ब्रा० १४.६.१.१०.

८- तै० सं० ६.३.१०.५. के अनुसार केवल सन्तान उत्पन्न करके ही पितृऋण से छुटकारा नहीं मिलता। वह (सन्तान) ~~अगर पुत्री हो तो पितृऋण नहीं उतरता.~~ 6.3.10.5. केवल पुत्र से ही पितृऋण उतरता है। Keith, A.B.: tr. Taittiriya Samhita 6.3.10.5.

और जोड़ दिया है जो कि मनुष्य ऋण है[1] ।अथर्ववेद में लौकिक एवं वैदिक दोनों प्रकार के ऋणों से इस लोक में ही छूट कर मृत्यु के अनन्तर स्वर्गादि पुण्य स्थानों की प्राप्ति के लिए अग्नि की प्रार्थना किये जाने का उल्लेख मिलता है[2] । ब्राह्मण ग्रन्थों में देवों को अमर तथा पितरों को मर्त्य कहा गया है । ऐसा वर्णन आता है कि सूर्य के उत्तरायण होने पर अग्न्याधान करने से देवों का पाप छूट गया । इसलिए देव अमर हैं तथा जो मनुष्य इस काल में अग्न्याधान करता है, वह पूर्णायु को प्राप्त होता है । जो सूर्य के दक्षिणायन होने पर अग्न्याधान करता है, उस का पाप दूर नहीं होता । वह आयु से पहले मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । चूंकि पितरों का पाप भी नहीं छूटा था इसीलिए पितर भी मर्त्य हैं[3] । पिण्डपितृयज्ञ में अमावस्या की रात्रि को जब कि चन्द्रमा क्षीण हो जाता है तो पितरों को भोजन दिया जाता है । चन्द्रमा सोम राजा है जो कि देवों का भोजन है । यदि पूर्णिमा की रात्रि को पितरों को भोजन दिया जाए तो उन में (पितरों और देवों में) झगड़ा हो जाता है[4] । इस से सिद्ध होता है कि देवताओं की क्रियाएं (भोजनादि देना) पूर्णिमा में तथा पितरों की क्रियाएं अमावस की रात्रि को की जाती हैं । इसी प्रकार देवों का दिन तथा शुक्ल पक्ष एवं पितरों की रात्रि तथा कृष्ण पक्ष माना गया है[5] । छः ऋतुओं में से वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा ये देव ऋतुएं तथा शरद्, हेमन्त और शिशिर ये पितर ऋतुएं मानी जाती हैं[6] । ब्राह्मण ग्रन्थों में मार्ग तथा दिशा के साथ-साथ

१- मा० श० ब्रा० १.७.२.१-५.

२- अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम् ।
अथर्व० ६.११७.३.

३- मा० श० ब्रा० २.१.३.४., का०श०ब्रा० १.१.३.३.

४- मा० श० ब्रा० २.४.२.७.

५- य एवापूर्यतेऽर्धमासः स देवः योऽपक्षीयते स पितरोऽहरेव देवा रात्रिः पितरः ।
मा० श० ब्रा० २.१.३.१., का०श०ब्रा० १.१.३.१.

६- वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः । ते देवा ऋतवः । शरद्धेमन्तः शिशिरस्ते पितरो ।
मा० श० ब्रा० २.१.३.१., का०श०ब्रा० १.१.३.१.

उन के द्वार के विषय में भी उल्लेख मिलता है। देवलोक का द्वार उत्तर-पूर्व में तथा पितृलोक का द्वार पूर्व और दक्षिण के बीच है[१]। क्योंकि दक्षिण दिशा पितरों की मानी गई है। सूर्य जब उत्तरायण में होता है तो वह देवताओं में होता है और इन की रक्षा करता है किन्तु दक्षिणायन में पितरों में होता है और उन की रक्षा करता है[२]। सूर्य को देवलोक का द्वार तथा चन्द्रमा को पितृलोक का द्वार माना गया है[३]। देवताओं को वाणी तथा पितरों को मन कहा गया है[४]। पुरुष सूक्त में चन्द्रमा की उत्पत्ति मन से कही गई है। चन्द्रमा का पितरों से विशेष सम्बन्ध है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि पितरों को यह मन की उपाधि इसीलिए दी गई है। अन्त्येष्टि संस्कार दाहकर्म में तथा पितृयज्ञ अथवा पितरों के अन्य कार्यों में प्रयुक्त अग्नि को क्रव्याद् कहा गया है। जब कि अन्य शुभ कार्यों अथवा देवों से सम्बन्धित यज्ञों में प्रयुक्त अग्नि को जातवेदस् अथवा हव्यवाहन कहे जाने का उल्लेख मिलता है। इस क्रव्याद् अग्नि का यम लोक से सम्बन्ध है जहां कि पितर रहते हैं। इस क्रव्याद् अग्नि को यमराज्य में भेजने का निर्देश है तथा जातवेदस् अग्नि को देवताओं के पास हवि पहुंचाने के लिए कहा गया है[५]। ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओं

१- उभे दिशावन्तरेण विदधाति प्राचीं च दक्षिणां चैतस्यां ह दिशि पितृलोकस्य द्वारम्। मा० श० ब्रा० १३.८.१.५.
यद्देवोदङ् प्राङ् तिष्ठन् एतस्यां ह दिशि स्वर्गस्य लोकस्य द्वारम्। मा० श० ब्रा० ६.६.२.

२- स (सूर्यः) यत्रोदगावर्तते। देवेषु तर्हि भवति देवांस्तर्ह्यभिगोपायत्यथ यत्र दक्षिणावर्तते। पितृषु तर्हि भवति पितृंस्तर्ह्यभिगोपायति। मा० श० ब्रा० २.१.३.३., का०श०ब्रा० १.१.३.२.

३- कौ० उ० १.२.

४- देवाः पितरो मनुष्याऽएतऽएव। वागेव देवा मनः पितरः प्राणो मनुष्या। मा० श० ब्रा० १४.४.३.१३.

५- ऋ० १०.१६.६-११., तै० सं० २.६.१२.४., वा० सं० १६.६५., तै० सं० २.५.८.६.

तथा पितरों की अग्नियां भी अलग-अलग हैं जो कि उन्हें हवि पहुंचाती हैं । पितरों तथा देवताओं की समता में ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि पितरों को भी देवत्व प्राप्त था तथा उन्होंने देवताओं के समान ही कार्य किए । यज्ञ में भी उनको देवताओं की भान्ति आह्वान करके स्वधायुक्त हवियां प्रदान की गई हैं । अपने उपासकों की देवों की भान्ति पूर्णतया रक्षा करते हैं तथापि उन्हें देवताओं की कोटि में नहीं गिना गया । उन्हें देवताओं से भिन्न ही माना जाता है । जैसा कि हापकिन्स का मत है कि वे देवताओं से भिन्न ही माने जाते थे उन्हें कभी भी देवताओं के वर्ग में नहीं रखा गया[१] । ब्राह्मणकाल में उन की देवताओं से भिन्नता का और भी स्पष्टीकरण मिलता है । जैसा कि देवलोक में इन्द्र की स्थिति तथा पितृलोक में यम की स्थिति मानी गई है[२] ।

पितरों के विभाग

पितरों की तीन श्रेणियां मान कर उन्हें अवर (निकृष्ट) उत्कृष्ट तथा मध्यम कहा गया है[३] । इसी स्थल पर उन्हें पूर्व और अपर भी कहा गया है अर्थात् पूर्वकालीन पितर तथा अर्वाचीन पितर जो कि स्वर्ग को गए हैं तथा पृथिवी पर स्थित हैं, नमस्कार करने का विधान मिलता है[४] । इस के अतिरिक्त पितरों का अन्य प्रकार से भी विभाग किया गया है । सोमवन्त पितर (सोमयज्ञ करने वाले), बर्हिषद पितर (कुशासन पर बैठ कर अन्न का सेवन करने वाले) तथा अग्निष्वात

१- Hopkins; Religions of India, p. 143-45.

२- देवलोको वा इन्द्रः पितृलोको यमः । कौ० ब्रा० १६.८. तु० की० कौ० ब्रा० १६.५.

३- उदीरतामवर उत्परासः उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । ऋ० १०.१५.१. मै० सं० ४.१०.१४४., नि० ११.१८., अथर्व० १८.१.४४., यजु० १६.४६.

४- इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः । ऋ० १०.१५.२. अथर्व० १८.१.४६., यजु० १६.६८.

पितर (जिन्हें अग्नि जलाती है)[1] अन्तिम दो नाम ऋग्वेद में भी आए हैं[2]। संहिताओं की व्याख्या करते हुए ब्राह्मण ग्रन्थों में इन तीन प्रकार के पितरों के लिए अलग-अलग प्रकार की हवियों का विवरण मिलता है। जैसे कि छः कपालों का पुरोडाश सोमवन्त पितरों के लिए[3]। दक्षिणाग्नि पर भुने हुए धान जो कि आधे पीसे हुए तथा आधे बिना पीसे हुए धान बर्हिषद पितरों के लिए[4] तथा पीसे हुए धानों में अन्य के बछड़े को पिलाने वाली गाय का दूध मिला कर और उसे शलाका से एक ही बार हिला कर जो हवि बनाई जाती है वह अग्निष्वात्त पितरों की होती है[5]। सिद्धेश्वर शास्त्री के अनुसार सोमयज्ञ, चरुयज्ञ तथा सामान्य यज्ञ करने वाले व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् क्रमशः सोमवन्त, बर्हिषद एवं अग्निष्वात्त पितर बन जाते हैं[6]। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार जो सोम से यज्ञ करते हैं वे सोमवान पितर कहे जाते हैं, जिन

१- मा० श० ब्रा० २.६.१.७., का० श० ब्रा० १.६.१.६., काठक सं० ६.६.१७.

२- बर्हिषदः पितर उत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्। ऋ० १०.१५.४.
वा० सं० १६.५५., तै० सं० २.६.१२.२., मै० सं० ४.१०.१३६., काठक सं० २१.६३., अथर्व० १८.१.५१., नि० ४.२१.
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः। ऋ० १०.१५.११.
वा० सं० १६.५६., मै० सं० ४.१०.१४३, काठक सं० २१.६६., अथर्व० १८.३.४४., तै० सं० २.६.१२.२.

३- सोमाय पितृमते पुरोडाशं षट्कपालं निर्वपति। तै० सं० १.८.५.१.
स पितृभ्यः सोमवद्भ्यः। षट्कपालं पुरोडाशं निर्वपति - - - - - -।
मा० श० ब्रा० २.६.१.४., का० श० ब्रा० १.६.१.३., द्र० तै० ब्रा० २.६.१६.१.

४- अथ पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यः। अन्वाहार्यपचने धाना - - - - - - - - - -।
तै० सं० १.८.५.१., मा० श० ब्रा० २.६.१.५., का० श० ब्रा० १.६.१.४.
तै० ब्रा० २.६.१६.१.

५- अथ पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्यः------------। तै० सं० १.८.५.१. मा० श० ब्रा० २.६.१.६., का० श० ब्रा० १.६.१.५. तै० ब्रा० २.६.१६.१.

६- शास्त्री, सिद्धेश्वर; भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश पृ० ४१६.

पितरों को अग्नि में जलाया जाता है वे अग्निष्वात्त पितर हैं। अनु यज्ञ न करने वाले गृहस्थों के लिए भी अग्निष्वात्त पितर का प्रयोग मिलता है।जो पके हुए दिए अन्न से तीनों लोकों को जीतते हैं वे बर्हिषद पितर कहलाते हैं अथवा यज्ञ करने वाले व्यक्तियों को भी बर्हिषद कहा जाता है[1]। परवर्ती साहित्य में पितरों का अनेक प्रकार का विभाजन मिलता है। पुराणों में ब्राह्मणों के पितरों को अग्निष्वात्त, क्षत्रिय के पितरों को बर्हिषद, वैश्यों के काव्य, शूद्रों के सुकालिन् तथा म्लेच्छों के व्याम पितरों का उल्लेख मिलता है[2]। मनुस्मृति में ऐसा वर्णन मिलता है कि मनु के पुत्रों के जो पुत्र हुए वे अलग-अलग जातियों के पितर कहलाए। विराट के पुत्र सोमसद्, साध्यों के पितर कहलाए, मरीचि के पुत्र अग्निष्वात्त देवताओं के पितर कहलाए, अत्रि के पुत्र बर्हिषद् दैत्यादिकों के पितर बन गए। उस के पश्चात् कवि के पुत्र सोमपा, अंगिरा के पुत्र हविर्भुज्, पुलस्त्य के पुत्र आज्यपा तथा वसिष्ठ के पुत्र सुकालिन् क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के पितर हैं[3]। अनन्तर अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध, काव्य, बर्हिषद्, अग्निष्वात्त और सौम्य ये सब ब्राह्मणों के पितर कहे गए हैं[4]। इस के अतिरिक्त पुराणों में पितरों के पर्याप्त भेदों का विवरण उपलब्ध होता है। गरुड़ पुराण के पितृस्तोत्र में इकत्तीस (३१) पितरों का उल्लेख है[5] तथा मार्कण्डेय पुराण में भी पितरों के ३१ गणों का वर्णन करके उन्हें श्राद्धों के देवता माना गया है[6]। पितरों का विभाग एक अन्य प्रकार से भी मिलता है।

१- तै० ब्रा० १.६.९.५-६.

२- अग्निष्वात्ता: ब्राह्मणानां पितर: परिकीर्तिता। राज्ञां बर्हिषदो नाम विशां काव्या परिकीर्तिता। सुकालिनस्तु शूद्राणां व्यामा म्लेच्छान्त्यजातिषु।
नान्दी पुराण, श्राद्ध प्रकरण।

३- मनु० ३.१९३-१९८.

४- अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा। अग्निष्वात्तांश्चसौम्यांश्चविप्राणामेवनिर्दिशेत्।। मनु० ३.१९९.

५- गरुड़ पुराण प्रेतखण्ड, अध्याय ८९ पितृस्तोत्र।

६- मा० पु० ९३.१३.

अग्निदग्ध तथा अनग्निदग्ध । ये दोनों प्रकार के पितर द्युलोक में स्वधा से आनन्दित रहते हैं[1] । इन पितरों के लिए यजुर्वेद में अग्निष्वात्त तथा अनग्निष्वात्त शब्दों का प्रयोग मिलता है[2] । इस का अर्थ भी वही है जो कि अग्निदग्ध तथा अनग्निदग्ध पितरों का है । अर्थात् अग्नि द्वारा जलाए गए तथा अग्नि के द्वारा नहीं जलाए गए, जिन का कि दाह संस्कार नहीं हुआ वे पितर अनग्निदग्ध कहलाते हैं । इस के अतिरिक्त पितरों के नवग्व, दशग्व, विरूप, अङ्गिरस, अथर्वन, भृगु और वसिष्ठ आदि वर्गों का उल्लेख मिलता है[3] । कुछ स्थलों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये नवग्न तथा दशग्व अङ्गिरसों के ही भेद हैं[4] । कहीं कहीं पितरों को सप्तर्षि भी कहा गया है[5] । नवग्व तथा दशग्व का सप्तर्षि रूप में वर्णन मिलता है[6] । मैकडौनल के अनुसार अथर्वन्, भृगु और वसिष्ठ उन ऋषियों के नाम हैं जो परम्परा के अनुसार ऋग्वेद के दो से सात तक के छः मण्डलों के तथा अथर्ववेद के मन्त्रद्रष्टा माने जाते हैं[7] । जैसा कि अथर्वाङ्गिरस एक विशेष वेद का नाम है । वेबर के अनुसार अग्नि पुरोहित अथर्वनों और अङ्गिरसों को अथर्ववेद की रचना का श्रेय देना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित है क्योंकि महाकाव्य में भी अग्निपूजा अथर्ववेद से ही सम्बद्ध है[8] ।

१- ऋ० १०.१५.१४., अथर्व० १८.२.३५.

२- ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते । यजु० १६.६०.

३- अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिः यम: वैरूपैरिह मादयस्व । अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । ऋ० १०.१४.५-६., तै० सं० २.६.१२.६., मै० सं० ४.१४.२२१, वा० सं० १६.५०., अथर्व० १८.१.५६.५८, नि० ११.१६. येनः पूर्वे पितरः सोम्यासो नूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः । ऋ० १०.१५.८. अथर्व० १८.३.४६.

४- ऋ० ५.३६.१२, १.६२.४, १०.६२.६.

५- ऋ० ४.४२.८., ६.२२.२.   (६)- वही १.६२.४.

७- Macdonell, A.A.: A students' Vedic Reader P.176.
Macdonell, A.A.: V.M. P.171

८- Weber, History of Indian literature P.148

ऋग्वेद के दशम मण्डल के चौदहवें सूक्त के चौथे, पांचवें और छठे मन्त्र पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये सभी अङ्गिरस नामक पितरों के ही भेद हैं[१] ।

ऋग्वेद में वर्णित छ: पितर

नवग्व

नवग्व शब्द ऋग्वेद में कुल चौदह बार प्रयुक्त हुआ है, जिनमें से छ: बार अंगिरसों के साथ इस का प्रयोग हुआ है । अंगिरसों की भान्ति इनका भी सम्बन्ध इन्द्र, सरमा, पणि और गायों के साथ है[२] । इन्द्र ने नवग्वों को सखा के रूप में साथ ले कर गायों को ढूंढा तथा दशग्वों के साथ अन्धकार में छिपे सूर्य का दर्शन किया[३] । इन नवग्व तथा दशग्व पितरों ने स्तोत्रों द्वारा इन्द्र की स्तुति करके असुरों द्वारा आच्छादित गौ-समूह को उन्मुक्त किया[४] । एक स्थल पर आया है कि सवन-पाषाणों से उठने वाली तालयुक्त ध्वनि के द्वारा दस मास तक यज्ञ का सम्पादन करते रहे[५] । सायण ने जहां नवग्व का नवमास पर्यन्त, गौओं के लिए अनुष्ठान करने वाले अथवा नौ गौओं वाले अर्थ किया है[६] । यास्क ने नवग्व शब्द का निवर्चन करते हुए इस का

१- Cp. Hopkins; Religions of India P. 159 तथा द्र० कैलाशचन्द्र, पितृपूजा, पृ० ६६.

२- ऋ० १०.६२.३-४, ५.४५.७, १०.१०८.८.

३- सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् । सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वै: सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ।। ऋ० ३.३९.५.

४- नवग्वास: सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कै: । गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नर: शशमाना अप व्रन ।। ऋ० ५.२९.१२.

५- धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन् दश मासो नवग्वा: । ऋ० ५.४५.११, अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वा: । ५.४५.७.

६- सायण भाष्य, ऋग्वेद ५.४५.११.

नव प्रकार की गति वाले अथवा नवनीत (मक्खन) के समान गति वाले (शुद्धाचरण वाले) अर्थ किया है[१]। सायणाचार्य के अनुसार नवग्व का अर्थ है, जो नवमास वाले (यज्ञ विशेष) को करने वाले हैं[२] तथा स्वामी दयानन्द ने नवीन गति वाले ऐसा अर्थ माना है[३]। स्कन्दस्वामी ने भी यास्क की साक्षी से उन्हें अंगिराओं में ही गिना है[४]। बहुवचन में आये प्रयोगों में से दो स्थलों पर नवग्व शब्द विशेषणरूप में प्रयुक्त हैं। इन में से एक स्थल पर अग्नि की रश्मियों का विशेषण है।[५] यहां सायण के अनुसार इस का अर्थ "नूतन-गमना" है[६]। एक वचन में इस का प्रयोग तीन बार हुआ है। यहां पर अङ्गिरस[७] तथा दध्यञ्च[८] के विशेषण के रूप में प्रतीत होता है। इस का प्रतीयमान अर्थ नव (समूह) में जाने वाला है। बहुवचन में सम्भवत: यह प्राचीन नव पुरोहितों के वृन्द का वाचक रहा हो[९]। वास्तव में नवग्व शब्द अंगिरसों का ही विशेषण है जो कि इन की महत्ता को दर्शाता है।

दशग्व

दशग्व शब्द ऋग्वेद में ७ बार आया है। दशग्व पितर याज्ञिकों में प्रथम माने गए हैं[१०]। इन्द्र ने अपने सखा नवग्वों के साथ गौएं ढूंढी और दशग्वों के

१- नवगत्यो नवनीत गतयोवा। नि० ११.१८.

२- नवग्वा: नवभिर्मासै: सत्रमनुतिष्ठन्त:। सायण भाष्य ऋ० १०.१४.६.

३- दयानन्द भाष्य, ऋ० १०.१४.६.

४- नवा सर्वदैव श्रम वर्जिता गतिर्येषां ते नवग्वा:। नवनीते वा गतिरभिलाषो येषां ते नवग्वा अंगिरसा:। ऋ० १.६२.४.पर स्कन्दस्वामी भाष्य

५ — ऋ० ८.६.३.

६- सायण भाष्य ऋ० ६.६.३. (७)- ऋ० ४.५१.४, १०.६२.६.

८- ऋ० ६.१०८.४.

९- सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, पृ० ३७४.

१०- ते दशग्वा: प्रथमा यज्ञमूहिरे ॥ ऋ० २.३४.१२.

साथ अन्धकार में परिविष्ट सूर्य को प्राप्त किया[१] । नवग्व और दशग्वों ने स्तोत्रों द्वारा इन्द्र की स्तुति करके असुरों द्वारा आच्छादित गो समूह को उन्मुक्त किया[२] । नवग्व तथा दशग्व इन दोनों का इकट्ठा ही नाम आता है तथा इन की संख्या में भी केवल एक अंक का ही अन्तर है । इसीलिए मैकडौनल के अनुसार नवग्व के ढांचे पर ही दशग्व का निर्माण हुआ, ऐसा प्रतीत होता है[३] । बरगैग्ने ने भी इन्हें विशेषण के रूप में ही माना है जो कि नव और दश पुरोहितों के समूह को दर्शाते हैं[४] । पी० वी० काणे इन्हें अलग रूप में न मान कर अङ्गिरसों का ही उपविभाग मानते हैं[५] ।

अथर्वन्

अथर्वा नाम ऋग्वेद में चौदह बार आता है तथा अथर्ववेद में भी यह नाम अनेक बार प्रयुक्त हुआ है । अधिकतर इन का वर्णन प्राचीन पुरोहितों के रूप में आता है । ऋग्वेद में ऐसा विवरण मिलता है कि इन्होंने आकाश के बीच अरणिद्वय के मध्य से अग्नि को उत्पन्न किया[६] । तथा आज भी ऋत्विक् लोग अथर्वा की तरह अग्नि को मथ कर विभासित करते हैं[७] । यज्ञों के द्वारा प्रथम पथ को प्रदर्शित किया तदुपरान्त सूर्य आविर्भूत हुए[८] । यहां पर तात्पर्य उन चुराई हुई गौओं से है जिन्हें वृत्र ने चुराया था तथा अथर्वा ने उन का पता लगा कर मार्ग प्रदर्शित करके सूर्य को आविर्भूत किया । अथर्ववेद में यह इन्द्र के लिए चमस में सोम लाते हैं[६] । बहुवचन में अथर्वणों की गणना

१- ऋ० ३.३६.५.

२- ऋ० ५.२६.१२.

३- Macdonell; V.M. P.144

४- Bergaigne's Vedic Religion, tr. by V.G. Paranjpe; Poona 1978 P.317

५- Kane P.V; H.D. Vol. IV. P.192

६- त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत: ।ऋ० ६.१६.१३.

७- इममुत्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधस: । ऋ० ६.१५.१७.

८- यज्ञैरथर्वा प्रथम: पथस्तते तत: सूर्यो व्रतपा वेन आजनि । ऋ० १.८३.५.

६- अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते । अथर्व० १८.३.५४.

अंगिरा, नवग्व, और भृगु पितरों में की गई है[1]। वे स्वर्ग में निवास करते हैं और देवता कहलाते हैं[2] तथा राक्षसों का ध्वंस करते हैं[3]। ऋग्वेद में अधिकतर अथर्वा शब्द पुरोहित के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। एक स्थान पर ऐसा उल्लेख आया है कि एक आश्रयदाता उन्हें सौ गायें दान देता है[4]। मैकडौनल के अनुसार यह प्राचीन नाम किसी अर्ध-दिव्य स्वरूप वाली प्राचीन पुरोहित जाति का बोधक रहा होगा जो जाति आगे चलकर अपने नेता अथर्वा के नाम से ही ख्याति को प्राप्त हुई[5]।

अङ्गिरस

अङ्गिरसों का नाम ऋग्वेद में ६० बार आता है। एक सम्पूर्ण सूक्त में अङ्गिरा वर्ग की स्तुति की गई है[6]। वे स्वर्ग के पुत्र हैं[7] तथा इन्हें ऋषि और देवों के पुत्र भी कहा गया है[8]। इस के साथ ही उन्हें विविध रूप वाले, श्रेष्ठ कर्म करने वाले मान कर अग्नि के पुत्र भी कहा गया है[9]। एक स्थल पर इन्हें स्पष्टतया पितर माने जाने का उल्लेख मिलता है[10] तथा इन को ही पूर्वपुरुष (पूर्वज) माना गया है[11]

१- ऋ० १०.१४.६.

२- आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाण:। अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस:। अथर्व० ११.६.१३.

३- वही ४.३७.१.

४- ऋ० ६.४७.२४.

५- Macdonell, A.A.; V.M. 141

६- ऋ० १०.६२ सम्पूर्ण सूक्त

७- ऋ० ३.५३.७.,१०.७३.२, ४.२.१५.

८- ऋ० १०.६२.४.

९- वही १०.६२.५.

१०- य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृते नाभिन्दन् परिवत्सरे वलम्। ऋ० १०.६२.२.

११- ऋ० १.६२.२.

पितरों के राजा यम के साथ अङ्गिरसों का निकटतम सम्बन्ध है। यज्ञ में यम के साथ ही अङ्गिरसों का आह्वान किया गया है[1]। इन्द्र के साथ भी अङ्गिराओं का पर्याप्त सम्बन्ध है। इन्द्र ने गुहा में पणियों द्वारा चुराई गई गौओं को प्राप्त करके इन्हें प्रदान किया थी[2] तथा इन की सहायता से इन्द्र ने वज्र को घुमा कर 'बल' नामक असुर को विनष्ट किया[3]। इन्द्र की मैत्री तथा देव-समान अमरत्व को अङ्गिराओं ने यज्ञ द्वारा प्राप्त किया[4]। उक्थ्यों द्वारा (मन्त्रों द्वारा) अग्नि की स्तुति करके उस के बल से दृढ़ांग पणि असुर का भेदन करके हमारे लिए महान् द्युलोक का मार्ग निर्माण किया अनन्तर दिवस के प्रकाश सूर्य को तथा गौओं (किरणों) को प्राप्त किया[5]। अतएव इन्द्र के साथ तो इन का सम्बन्ध इतना है कि एक स्थल पर आता है कि इन्द्र के कहने पर सरमा गौओं की खोज में पणियों के पास जाती है वहां उन को अङ्गिराओं की शक्ति के विषय में बताती है[6]। इन्द्र के अतिरिक्त इन का सम्बन्ध अग्नि से भी है। एक मन्त्र में अग्नि से मनु, अङ्गिरा, ययाति एवं अन्य पूर्व पुरुषों की तरह सम्मुखवर्ती हो कर यज्ञ देश में गमन करने के लिए कहा गया है[7]। ऋग्वेद के नवम मण्डल की रचना इसी कुल के ऋषियों द्वारा की गई है। जैसा कि अथर्वाङ्गिरस समास में भी पुरोहित कुल से ही तात्पर्य प्रतीत होता है। तथा इस पद को अथर्ववेद के नाम के रूप में स्वयं उसी वेद में[8] तथा परवर्ती साहित्य

१- ऋ० १०.१४.३-४, मै० सं० ४.१४.२३१ अथर्व० १८.१.४७, ६७.

२- उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः। ऋ० ८.१४.८.

३- --भिनद्वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान्।। ऋ० २.११.२०

४- वही १०.६२.१.

५- ऋ० १.७१.२. (६)- ऋ० १०.१०८.८,१०.

७- मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम्।। ऋ० १.३१.१७.

८- सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं - - - -। अथर्व० १०.७.२०.

में ग्रहण कर लिया गया है[१] । मैकडोनल के अनुसार यह देवताओं और मनुष्यों की बीच की कोई अभिवात जाति रही होगी ; जिस का पृथिवी और द्युलोक के मध्य दूत रूप में वर्णन है । सम्भवतया अङ्गिरा अग्नि के परिचर रहे होंगे[२] और उन का पुरोहित रूप में परिवर्तन उन के परवर्ती विकास का परिणाम रहा होगा[३] तथा वेबर ने भी इन्हें पुरोहित कुल का ही माना है[४] । ऐसा प्रतीत होता है कि अङ्गिराओं की अङ्गिरा की निष्पत्ति से जो निष्कर्ष निकलता है[५] । उस के आधार पर ही मैकडोनल-हेन को स्वर्ग के दूत अग्नि ज्वालाओं का मानवीकरण कहा है । परन्तु यह निष्पत्ति उन के विशेषण के रूप में है । वास्तव में यह अङ्गिरस वही पितर हैं जो कि यम के द्वारा ढूंढे गए रास्ते का अनुसरण करते हुए, दूसरे लोक में यम के पास सर्वप्रथम गए ।

विरूप

विरूप का बहुवचन में तीन बार उल्लेख हुआ है । अंगिरा और विरूप स्वर्ग के पुत्र हैं[६] । इन का अङ्गिरसों के साथ ही वर्णन मिलता है । अङ्गिरस तथा विरूप पितरों के साथ यम का यज्ञ में आह्वान करने का वर्णन मिलता है[७] । बहुवचन में यह शब्द ' विविध रूपों वाला ' अर्थ में प्रयुक्त होता है[८] । तब विशेषण के रूप में इस का अङ्गिरस के साथ प्रयोग होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह अङ्गिरस का ही विशेषण है क्योंकि पृथक् रूप में इन के द्वारा किसी विशेष कार्य के किये

१- य एवं विद्वानथर्वाङ्गिरसो इरह: स्वाध्यायमधीते ।। मा० श० ब्रा० ११.५.६.७.

२- Macdonell, A.A. V.M. P.143

३- Cp. Bergaigne's Vedic Religion (Eng. tr.) Vol II. P. 319.

४- Weber A; History of Indian literature, P.31

५- अङ्गारेषु अङ्गिरा । नि० ३.१७.

६- इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीरा: । ऋ० ३.५३.७.

७- ऋ० १०.१४.४.

८- विरूपो नाना रूपो । नि० ३.१७.

जाने का उल्लेख नहीं मिलता ।

भृगु

भृगु नाम ऋग्वेद में २१ बार आया है । प्राचीनकाल में देवों के दूत अग्नि को निधि की भान्ति भृगु के पास लाये थे[१] । अथवा भृगुओं के लिए गुहा स्थित (निगूढ़) अग्नि को प्रज्वलित किया था[२] । ऐसा भी वर्णन मिलता है कि पानी में स्थित अग्नि को भृगुओं ने ही स्तुति करके खोजा था[३] तथा अग्नि की उपासना करके उसे जल के निवास-स्थान अन्तरिक्ष और मनुष्यों के आवास(हृदय) में स्थापित किया[४] तथा स्तोत्रों द्वारा ही अग्नि को समिध में प्रभासित किया[५] । उन का कौशल यहां अग्नि के उत्पादन करने में व्यक्त किया गया है, वहां कला सामान्य के क्षेत्र में भी विख्यात है । एक मन्त्र में अश्विनों तथा इन्द्र के लिए इस प्रकार स्तोत्रों की रचना का वर्णन मिलता है जिस प्रकार कि भृगुओं ने रथ का निर्माण किया था[६] । जैसे भृगुओं ने रथों का निर्माण किया वैसे ही रथ अश्विनी कुमारों के लिए बनाए जाने का विधान मिलता है (ऋ० १०.३६.१४) भृगु की उत्पत्ति अग्नि की ज्वालाओं से मानी जाती है इसी लिए निरुक्तकार ने आग में भुना हुआ तथा जिस की शरीर में आस्था नहीं ऐसा अर्थ किया है[७] । इस प्रकार यहां इन्द्र के

१- वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्यो अर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा ।। ऋ० १.६०.१.

२- वही ३.५.१०.

३- इमं विधन्तो अपां सधस्थे । द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वायोः ... इच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् । ऋ० १०.४६.२.

४- ऋ० २.४.२.

५- ऋ० ४.७.१, १०.१२२.५.

६- ऋ० ४.१६.२०, १०.३६.१४.

७- अर्चिषि भृगुः सम्बभूव । भृगुः भृज्यमानो न देहे । यास्क नि० ३.१७.

स्तोत्रों की रचना की तुलना भृगुओं द्वारा निर्मित रथ के साथ की गई है। भृगु लोगों के द्वारा इन्द्र की स्तुति किये जाने का भी उल्लेख मिलता है[1] तथा एक गाथा के साथ उन का सम्बन्ध बंधता है जिस में कि उन्होंने 'मख' नामक दानव का प्राचीनकाल में वध किया था[2]।

परवर्ती वैदिक साहित्य में भृगु एक वर्ग विशेष के प्रतिनिधिभूत ऋषि के रूप में आते हैं[3]। वे प्रजापति के वीर्य से स्फुलिंग की भान्ति उद्भूत होते हैं तथा वरुण द्वारा अपनाये जाने के कारण वारुणि इस पैतृक नामक को पाते हैं[4]। शतपथ ब्राह्मण में उन्हें स्पष्टतया वरुण का पुत्र कहा गया है[5]।

कव्य तथा ऋक्व पितर

ऋग्वेद में एक स्थल पर अङ्गिरसों के साथ कव्य तथा ऋक्व पितरों का भी उल्लेख मिलता है। कव्य पितरों का प्रधान मातली तथा ऋक्व का बृहस्पति माना गया है[6]। सायण के अनुसार यह कव्य तथा ऋक्व शब्द विशेष पितरों के अर्थ को व्यक्त करते हैं। तथा मातली का अर्थ जैसा कि परवर्ती साहित्य में सारथि के अर्थ में आया है। यहां पर भी सायण ने इसे इन्द्र के सारथि के रूप में लिया है[7]। कुछ विद्वानों के अनुसार कव्यों के राजकुमार का नाम मातलि था। इन्द्र के अर्थ में

१- य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः। ममेदुग्र श्रुधीहवम् ।। ऋ० ८.६.१८.

२- ऋ० ६.१०१.१३.

३- अथर्व० ५.१६.१., ऐ० ब्रा० २.२०.७.

४- ऐ० ब्रा० ३.३४.१. पं० ब्रा० १८.६.१.

५- भृगुर्ह वै वारुणिः। वरुणं पितरं विद्यामुपससार ।। मा० श० ब्रा० ११.६.१.१.

६- मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पति ऋक्वभिर्वावृधानः।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति। ऋ० १०.१४.३.
अथर्व० १८.१.४७.

७- सायण भाष्य, ऋ० १०.१४.३.

इस की कोई आवश्यकता नहीं है[1]। परन्तु मातली इन्द्र के सारथि के रूप में ही आया है जैसा कि परवर्ती साहित्य में भी यही अर्थ दृष्टिगोचर होता है तथा कव्य और ऋक्व नाम पितरों के ही अर्थ में आए है। सातवलेकर के अनुसार कव्य हवि का नाम है जो कि पितरों को दी जाती है क्योंकि बहुत से मन्त्रों में पितरों को कवि के नाम से कहा गया है। देवों को दी जाने वाली हवि का नाम हव्य है। दोनों हवियों का भेद करने के लिए ही पितरों की हवि को कव्य नाम से कहा गया है तथापि कई स्थानों पर पितरों के लिए भी हव्य का विधान है। परन्तु यहां पर कव्य शब्द से कव्य(हवि) खाने वाले पितरों का ग्रहण है तथा ऋक्व का अर्थ ऋचा सम्बन्धी ज्ञान रखने वाले है[2]। पी० वी० काणे इन्हें पितरों के विभिन्न विभाग मानते हुए ऋक्व का अर्थ गायक करते हैं[3]। ऐतरेय ब्राह्मण में इन कव्यों को देवों से छोटे (अवर) तथा पितरों से बड़े (उत्कृष्ट) माना कर इन की व्याख्या की गई है। इसीलिए यज्ञ में पहले कव्यों का मन्त्र पढ़ा गया है तथा बाद में पितरों से सम्बन्धित तीन मन्त्रों का उच्चारण किया गया है[4]। अन्त्येष्टि संस्कार में दाहकर्म में प्रयुक्त, तथा पितृयज्ञ अथवा पितरों के अन्य कार्यों में प्रयुक्त अग्नि को क्रव्याद कहा गया है जब कि अन्य शुभ-कार्यों अथवा यज्ञों में प्रयुक्त अग्नि को जातवेदस् अथवा हव्यवाहन कहे जाने का विधान मिलता है। इस क्रव्याद् अग्नि का यम लोक से सम्बन्ध है जहां कि पितर रहते हैं। चूंकि इस क्रव्याद् अग्नि को यमराज्य में भेजने का निर्देश मिलता है तथा जातवेदस् अग्नि को देवताओं के पास हवि पहुंचाने का विधान मिलता है[5]।

१- N.G. Chapekar; Pitra and Yama; Dr. S.K. Belvalkar, Felicitation Vol. P.37

२- सातवलेकर, अथर्ववेद १८ वां काण्ड सुबोध भाष्य, पृ० १२०.

३- Kavyas, Arigirases and Ṛkvans are different classes of Pitrs. In Ṛgveda 7.10.4 the Ṛkvans (singers) are associated with Bṛhaspati. Kane. P.V:H.D.: Vol. IV. P.192

४- ऐ० ब्रा० ३.३७., तु० कीo tr. Martin Haug तथा गंगा प्रसाद उपाध्याय(अनु०)

५- ऋ० १०.१६.९-११., वा० सं० १९.६५., तै० सं० २.६.१२,४.

तैत्तिरीय संहिता में स्पष्टतया देवताओं के पास हवि पहुंचाने वाली अग्नि को हव्यवाहन तथा पितरों के पास हवि पहुंचाने वाली हवि को कव्यवाहन कहा गया है[1]। छान्दोग्य ब्राह्मण[2] में यहां पर कव्यवाहन अग्नि के लिए स्वाहा शब्द प्रयुक्त हुआ है उस पर भाष्य करते हुए सायण ने यह हवि कव्य पितरों की मान कर उस हवि को ले जाने वाली अग्नि को कव्यवाहन अग्नि कहा है[3]। तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी कव्यवाहन पितरों की अग्नि मानी गई है[4]। उक्त उद्धरणों से प्रतीत होता है कि यह स्वध तथा कव्य एक विशेष पितर जाति है तथा इन्हीं कव्यों के पास हवि पहुंचाने वाली अग्नि को भी 'कव्यवाहन' यह नाम दिया गया है। अथर्ववेद में पितरों के विभिन्न नाम आए हैं और उन से रक्षा किये जाने के लिए प्रार्थना करने का उल्लेख मिलता है[5]। ऋग्वेद में छः प्रकार के पितरों की गणना है तो यहां पितरों के १६ भेदों की परिगणना मिलती है। परन्तु यहां ऐसा प्रतीत होता है कि यह मन्त्र पितरों की विशेषता को दर्शा रहे हैं। सातवलेकर ने इसी अर्थ को युक्तिसंगत (इन के विषय में कहा है कि इन्हें) माना है तथा इन मन्त्रों के शब्दों[6] को व्यक्तिवाचक संज्ञा न मान कर 'पितरः' का विशेषण भी माना जा सकता है। यदि इन पितरों को व्यक्तिवाचक संज्ञा मान लिया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन ऋषियों को भी पितरों की कोटि में मान लिया गया है। इन में कुछ नाम तो ऐसे ऋषियों के वर्णित हैं जो कि ऋग्वेद के मण्डलों के मन्त्रद्रष्टा कहे गए हैं pl.: इन ऋषियों को पितरों की कोटि में नहीं लाया जा सकता। पितरः शब्द से यहां कैलाशचन्द्र ने ऐसा माना है कि इस से जातीय पितरों के अतिरिक्त व्यक्तिगत पितरों के प्रति सम्मान प्रकट करने की

१- तै० सं० २.५.८.६.

२- स्वाहाऽग्नये कव्यवाहनाय। छा० ब्रा० २.३.१.

३- कव्यं पित्र्यं हविः तद्वहतीति कव्यवाहनोऽग्निः। सायण भाष्य छा० ब्रा० २.३.१

४- तै० ब्रा० १.६.६.६.

५- अथर्व० १८.३.१५-१६.

६- सातवलेकर, अथर्ववेद १८वां काण्ड सुबोध भाष्य तथा मंगलदेव, यम और पितर, पृ० १८१.

भावना का परिचय मिलता है[१] ।

पितरों के कार्य

पितर हमारे लिए अनेक कार्य करते हैं । इस पृथिवी पर मनुष्य उन के लिए जो भी सामग्री प्रदान (यज्ञादि में आहुतियां) करता है तथा पितरों के लिए श्राद्धादि करता है वह पितरों के प्रति विशेष श्रद्धा को दर्शाता है । इस के साथ ही पितरों से भी यह आशा की जाती है कि वे मनुष्य जाति की रक्षा करें । वैदिक साहित्य में उन के अनेक कार्यों का वर्णन मिलता है ।

रक्षा करना

संहिताओं में पितरों को हवि देते हुए उन से रक्षा करने के लिए याचना किये जाने का उल्लेख है[२] । युद्ध में शत्रु-सेना का विध्वंस करने के लिए इन की स्तुति की गई है[३] । तथा अर्बुद[०] को कहा गया है कि वह वनस्पति, गन्धर्व, अप्सराएं, सर्प देव आदि के साथ पितरों को शत्रुओं को दिखाएं ताकि वे उनका संहार करें, ऐसा वर्णन अथर्ववेद में मिलता है[४] । उपर्युक्त मन्त्रों से स्पष्ट होता है कि पितर युद्ध में

१- कैलाशचन्द्र, पितृपूजा, पृ० १०४.

२- उदीरतामवर उत्परास - - - - - - । असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नो वन्तु पितरो हवेषु । ऋ० १०.१५.१., वा० सं० १९.४९., अथर्व० १८.१.४४.

३- अथर्व० ८.८.१५.

०- ऐतरेय ब्राह्मण में अर्बुद का अर्थ इस प्रकार किया गया है अर्बुद काद्रवेय: सर्पऋषि मन्त्रकृत । ऐ० ब्रा० ६.१.अर्थात् अर्बुद नाम का कोई सर्पऋषि था । क्षेमकरण दास जी ने इस का अर्थ सेनापति किया है । क्षे० क्षेमकरणदास भाष्य. अथर्व० ११.९.२४

४- वनस्पतीन् - - - - - - ।गन्धर्वाप्सरस: सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितृन् । सर्वांस्तां अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरुदाराश्च प्रदर्शय ।। अथर्व० ११.९.२४.

हमारी रक्षा करते हैं तथा शत्रुओं का विनाश करके हमारी रक्षा करते हैं। इस के अतिरिक्त, अन्य देवताओं के साथ पितरों से रक्षा किये जाने के लिए स्तुति करने का उल्लेख मिलता है[१]। पितरों को दक्षिण दिशा का रक्षक मान कर उन से इस दिशा में रक्षा किये जाने के लिए प्रार्थना की गई है[२]। इस के अतिरिक्त पितरों को ब्रह्मयज्ञ में पुरोहित के कार्यों में, प्रतिष्ठा में, प्रज्ञा में, संकल्प में आशीर्वाद में तथा देव आह्वान में, इन सब कर्मों में रक्षा करने के लिए उन्हें आहुति दिये जाने का विधान मिलता है[३]। इस प्रकार पितर हमारी उपर्युक्त कार्यों में रक्षा करते हैं तथा मनुष्यों से हवि ग्रहण करके बदले में उन का भरण (पोषण) करते हैं[४]।

पाप से छुड़ाना व दीर्घायु के लिए प्रार्थना

पितरों से यह आशा की जाती है कि वे अन्य देवताओं के समान मनुष्य को पापों से छुड़ा देते हैं[५]। इस के अतिरिक्त अथर्ववेद में पितरों से दीर्घायु प्रदान करने के लिए प्रार्थना विषयक अनेक मन्त्र मिलते हैं। वृद्धावस्था तक सम्यक् प्रकार से चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा कार्य करते हुए पितरों से दीर्घायु के लिए प्रार्थना करने का उल्लेख मिलता है[६] तथा शत वर्षों की आयु पर्यन्त तथा इस से भी अधिक वर्षों तक पवित्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए उनकी स्तुति की जाती है[७]

१- ऋ० १.१०६.३, ६.५२.४.

२- मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणत: पातु। वा० सं० ५.११.का० सं० ५.१५.

३- पितर परे ते मावन्तु। अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। अथर्व० ५.२४.१५

४- तेना जनस्यासो भर्ता। वही १८.२.३०.

५- वही ११.६.१६.

६- वर्चसा मां पितर: सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु॥ वही १८.३.१०.

७- पुनन्तु मा पितर: सोम्यास: पुनन्तु मा पितामहा: ---- पवित्रेण शतायुषा
----- पुनन्तु प्रपितामहा: पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै॥
यजु० १६.३७.

यज्ञ में प्रविष्ट हो कर उन्हें हवि ग्रहण करते हुए इस के बदले में दीर्घायु के लिए प्रार्थना की जाती है[1] । सोम सम्पादन करने वाले पितरों का हवि खाने के लिए आह्वान करके उनसे रक्षा करने के लिए, आयु, प्रजा तथा धन-सम्पत्ति देने के लिए याचना किए जाने का उल्लेख मिलता है[2] ।

पुनर्जन्म में पितरों द्वारा सहायता

पितरों से प्रार्थना की गई है कि वे मन को पुन: प्राप्त करावें तथा प्राणादि और इन्द्रियसमूह को फिर (जीवन-धारण के लिए) देवें, ऐसा उल्लेख मिलता है[3] । तथा ऋग्वेद में सोम व पितरों के मनन करने योग्य स्तोत्रों से मन का आह्वान करने का विधान मिलता है[4] । यजुर्वेद में यही मन्त्र थोड़े से पाठ भेद में आया है जिस के अनुसार स्तुतियों से तथा पितरों के मनन करने योग्य स्तोत्रों से मन को पुन: बुलाया गया है[5] । इस प्रकार यहां मन के प्रत्यावर्तन में पुनर्जन्म विषयक धारणा को प्रदर्शित किया गया है तथा ऐसा करने में पितरों को विशेष साधन माना है । मन की उत्पत्ति चन्द्रमा (सोम) से है इसीलिए सोम की स्तुति की गई है[6] ।

१- अथर्व० १८.२.२६.

२- ऋ० १०.१५.१,५, अथर्व० १८.४.६२-६३.

३- पुनर्न: पितरो मनो ददातु दैव्यो जन: । जीवं व्रातं सचेमहि । ऋ० १०.५७.५. यजु० ३.५५.

४- मनोन्वा ह्वामहे नाराशंसेन सोमेन ।
पितृणां च मन्मभि: ।। ऋ० १०.५७.३.

५- - - - - -नाराशंसेन स्तोमेन--------- ।यजु० ३.५३.

६- चन्द्रमा मनसो जात: । ऋ० १०.९०.१३.यजु० ३१.१२.

सुख व कल्याण कर्ता

मानव मात्र के कल्याण के लिए विश्वामित्र जमदग्नि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम तथा वामदेव ऋषियों के साथ पितरों की स्तुति की गई है ताकि वे मनुष्य जाति का कल्याण करें[1]। उपर्युक्त शब्दों को सातवलेकर ने पितरों के ही विशेषण माना है तथा नमोभि: का अर्थ अन्न ग्रहण किया है[2]। निरुक्त में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है यथा अत्रि का, जिसके तीनों पाप नष्ट हो गए हैं ऐसा अर्थ है[3]। सम्भव है कि यह पितरों के ही विशेषण हों परन्तु इन ऋषियों को ऋग्वेद के प्रथम से दसवें मण्डल तक के मन्त्रद्रष्टा कहा जाता है। इस के अतिरिक्त भी पितरों का आह्वान करके तथा उन्हें कल्याण करने के लिए कई मन्त्रों के प्रयोग किये जाने का उल्लेख मिलता है[4]। इन उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त भी उनके कुछ अन्य कार्य हैं। पितरों ने ही अपनी प्रजा को उत्पन्न करके आने वाली संतति में पैतृक तेज बल को स्थापित किया तथा उन के वंश का चिरस्थायित्व को प्राप्त हो कर विस्तृत बन जाने का उल्लेख मिलता है[5]। तथा अग्निष्वात्त पितरों से यज्ञ में हवि प्रदान करते हुए वीर संतति की मांग की गई है[6]। बर्हिषद् पितरों को हवि देते हुए उन का प्रीतिपूर्वक सेवन करने के लिए, उन्हें कल्याणकारी रक्षण के साथ आगमन करके पाप रहित

१- विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गौतम वामदेव ।
शर्दिनो अत्रिरग्रभीन्नमोभि: सुसंशास: पितरो मृडता न: ।। अथर्व० १८.३.१६.

२- द्र० सातवलेकर, अथर्ववेद १८वां काण्ड सुबोध भाष्य पृ० २१७.

३- नि० ३.१७.

४- शंनो भवन्तु पितरो हवेषु ।। ऋ० ७.३५.१२.,अथर्व० १९.११.१.

५- स्वां प्रजां पितर: पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुं आततम् ।। ऋ० १०.५६.६.

६- ऋ० १०.१५.११.

करने के लिए तथा शान्ति के लिए उनका प्रार्थना किये जाने का वर्णन भी मिलता है [1] । अतएव पितरों का मनुष्यों के प्रति दृष्टिकोण मित्रता का है वे शत्रुओं का ध्वंस करते हैं किन्तु जब उन का कोई अपराध हो जाता है तो वे उन्हीं के लिए हिंसक भी बन जाते हैं । इसी लिए ऋग्वेद में उन से अपराध के कारण हिंसा न किये जाने के लिए स्तुति मंत्रों का उल्लेख मिलता है [2] । इस के अतिरिक्त ऐसा अनुमान किया जाता है कि जब कन्या रथ या अन्य वाहन में सवार हो कर पति-गृह को जाती है तो पितर लोग उस वधू को देखने आते हैं । इसी लिए उनसे वधू के लिए उत्तम सन्तान देने के लिए प्रार्थना किये जाने का उल्लेख मिलता है [3] ।

सूर्य प्रकाश प्रदान करना

पितरों ने यज्ञ करने के लिए अग्नि से अभिमुख गमन करके, उषा का आह्वान करते हुए सूर्य किरणों को सर्वत्र फैलाया [4] । उनके द्वारा उक्थों का उच्चारण करके अन्धकार को विनष्ट करके उषा को प्रकाशित किये जाने का उल्लेख मिलता है [5] ।

१- बर्हिषद: पितर: उत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा न: शंयोररपो दधात् ।।

ऋ० १०.१५.४.

२- आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितर: केन चिन्नो यद्व आग: पुरुषता कराम ।।

ऋ० १०.१५.६., तु० को० तै० ब्रा० १.३.१०.७.

३- ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् ।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ।।

अथर्व० १४.२.७३.

४- अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभिप्रसेदुर्ऋत माशुषाणा: ।
अश्मव्रजा: सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आज न्नुषसो हुवाना: ।।

ऋ० ४.१.१३.

५- ऋ० ४.२.१६., वा० सं० १९.६९. अथर्व० १८.३.२१.

देवताओं के साथ आनन्दित होते हुए पितरों ने मन्त्रों केवल से उषा को प्रादुर्भूत किया[1]। अङ्गिरस पितरों ने मन्त्रों द्वारा दृढ़ाङ्ग पणि असुर को नष्ट करके हमारे लिए महान् द्युलोक का मार्ग दिया। अनन्तर दिवस, आदित्य को पाया[2]। सर्वज्ञ, सूर्य ज्ञाता पितरों ने अन्धकारावृत्त शिलासमूहों को सोम के तेज से देख कर मेघ का अपहरण किया जिस से सूर्य किरणों को कोई रुकावट न हो[3]। यास्क भी निरुक्त में स्वः का अर्थ आदित्य करते हैं चूंकि यह सूर्य पूर्णतया अन्धकार को दूर भगाने वाला है। दीप्ती से युक्त होने से भी सूर्य का नाम स्वः है अथवा चन्द्रादि प्रकाशमानों को प्रकाशित करने वाला है[4]। द्युलोक को भी स्वः कहते हैं। इस प्रकार यह पितर सूर्य के जानने वाले हैं। जब बृहस्पति ने मेघ को तोड़ गिराया तथा सूर्य किरणों को प्राप्त किया तो पितरों ने नक्षत्रों द्वारा द्युलोक को शोभायमान किया। फिर रात्रि में अन्धकार को तथा दिवस में प्रकाश को स्थापित किया। ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि यजमानों के यज्ञ-निर्वाह के लिए सूर्य रूपी इन्द्र का महान् प्रकाश प्रकट हुआ तथा उसने समस्त जगत् को अन्धकार से छुड़ाया तथा पितरों द्वारा प्रदत्त ज्योति उपस्थित हुई तथा उस ने दक्षिणा का विस्तृत मार्ग दर्शाया[6]।

१- त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ।।
ऋ० ७.७६.४.

२- वही १.७१.२.

३- स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वां अभि नो ज्योतिषावीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ।।
ऋ० ६.६७.३६.

४- स्वः आदित्यो भवति । सु अरणः, सु ईरणः, स्वृतो रसान्, स्वृतो भासं ज्योतिषां, स्वृतो भासेति वा । एतेन द्यौर्व्याख्याता ।। नि० २.४.१४.

५- ऋ० १०.६८.११., अथर्व० २०.१६.११.

६- ऋ० १०.१०७.२

माघोनं का अर्थ इन्द्र सम्बन्धी प्रकाश है । सूर्य को चैत्र मास में इन्द्र संज्ञा होती है । अतएव माघोनं का अर्थ सूर्य का प्रकाश है[1] ॥ इस प्रकार उषा को उत्पन्न करना तथा सूर्यप्रकाश प्रदान करना पितरों के कार्य-महत्त्व को दर्शाता है ।

पितरों का स्थान

पितरों के निवास-स्थान को पितृलोक कहा जाता है । संहिताओं में कुछ ऐसे शोभायमान लोकों का वर्णन आया है जिनमें कि पितर रहते हैं मृतकात्मा को भी उन लोकों में बिठलाए जाने का निर्देश मिलता है[2] । यह पितृलोक कौन से हैं इसके विषय में वैमत्य पाया जाता है । पृथिवी तथा अन्तरिक्ष को भी पितृलोक माना गया है क्योंकि पितरों को पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक तीनों स्थानों में रहने वाला माना गया है ।

पितृलोक पृथिवी

पृथिवी पर भी पितरों की स्थिति मानी गई है अथर्ववेद में पृथिवी पर बैठने वाले पितरों के लिए स्वधा दिए जाने का विधान है[3]

पितृलोक-अन्तरिक्ष

पितरों को अन्तरिक्ष में रहने वाले भी माना गया है । क्योंकि, अन्तरिक्ष में रहने वाले पितरों के लिए स्वधा दिए जाने का उल्लेख मिलता है ।[4]

१- मंगलदेव, यम और पितर, प्रकाशक श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पृ० १३.

२- शुम्भन्तां लोका: पितृषदना: । पितृषदने त्वा लोके आसादयामि ।

अथर्व० १८.४.६७.

शुन्धन्तां लोका: पितृषदना: पितृषदनमसि । यजु० ५.२६, ६.१.

३- स्वधा पितृभ्य: पृथिवीषद्भ्य: । अथर्व० १८.४.७८.

४- स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्य: । अथर्व० १८.४.७९

पिता के पितर और जो पितामह आदि हैं उनकी विद्यमानता अन्तरिक्ष में दिखाई गई है[१] । मृतक का अन्तरिक्ष में पितरों के साथ मिल कर सोम तथा स्वधा से आनन्दित होने का निर्देश प्राप्त होता है[२] ।

पितृलोक-द्यु

पितरों का द्युलोक में रहने का वर्णन भी मिलता है । अथर्ववेद में द्युलोक में रहने वाले पितरों के लिए स्वधा दिए जाने का उल्लेख है[३] । द्युलोक भी तीन प्रकार का माना गया है । एक तो सब से नीचे का द्यौलोक जिस में कि जल रहता है । जिसमें ग्रह नक्षत्रादि स्थित हैं वह मध्य का द्युलोक है तथा तीसरा प्रद्यौ नाम का द्युलोक है जिस में कि पितर निवास करते हैं[४] । इस के अतिरिक्त पितरों को द्यु के पृष्ठों पर चढ़ने का उल्लेख मिलता है । जिस प्रकार के मार्ग से कि भूमि जीतने वाले अंगिरस आदि गए हुए हैं[५] । उपर्युक्त उद्धरणों से पता चलता है कि पितर पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यु इन तीनों लोकों में निवास करते हैं इसी कथन को निम्न मन्त्र प्रमाणित कर रहा है जिस में कहा गया है कि जो हमारे पिता के पितर हैं और जो उन के भी पितामह हैं, जो कि विशाल अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हुए हैं तथा जो पृथिवी और द्युलोक में निवास करते हैं उन पितरों के लिए नमस्कार है[६] ।

१- अथर्व० १८.३.५९.

२- अथर्व० १८.३.८.

३- स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्य: । अथर्व० १८.४.८०.

४- अथर्व० १८.२.४८.

५- इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यरुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययु: ।। अथर्व० १८.१.६१.

६- ये न: पितु: पितरो ये पितामहा: य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्य: पितृभ्यो नमसा विधेम ।। १८.२.४९.

अतएव यह मन्त्र पितरों का तीनों लोकों में निवास होना स्पष्टतया प्रतिपादन कर रहा है। पितरों का जो तीनों लोकों (पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक) में निवास बताया गया है इस से ऐसा प्रतीत होता है कि पितर लोग सूक्ष्म रूप में सर्वत्र घूमते रहते हैं। जब कभी पृथिवी पर इन्हें हवि प्रदान की जाती है अथवा उनका आह्वान किया जाता है तो वे अपने इसी सूक्ष्म रूप में आ कर वहां उपस्थित होते हैं।

पितृलोक एक अलग स्थान

यद्यपि पितरों को पूर्वोक्त तीनों स्थानों पर रहने वाला बताया गया है तथापि पितृलोक एक अलग लोक है। यहां कि सर्वप्रथम यम उस स्थान को गये तथा उस का अनुसरण करते हुए पितर लोग भी वहां पहुंच गये तथा यम उन का अधिपति कहलाया[१]। पृथिवी और अन्तरिक्ष में भी इन की विद्यमानता को स्वीकार किया जा सकता है। वास्तव में उन का लोक जिसे कि पितृलोक नाम से पुकारा जाता है द्युलोक में विद्यमान है[२] तथा सर्वोच्च आकाश में है[३]। ब्राह्मण-ग्रन्थों के अनुसार यह पितृलोक मनुष्य लोक से छिपा हुआ है[४]। पितर भी छिपे हुए हैं अर्थात् अदृश्य हैं[५]। ब्राह्मण ग्रन्थों में पितृलोक का अन्य लोकों से विभेद किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में तीन लोक माने गए हैं मनुष्य लोक, पितरलोक और देवलोक। इन में मनुष्य लोक पुत्र के द्वारा, पितरलोक यज्ञादि के द्वारा तथा देवलोक विद्यादि के द्वारा प्राप्त होता है[६]। इसी पितर लोक का दूसरे लोकों से भेद प्रदर्शित करते हुए तीन आहुतियां

१- ऋ० १०.१४.२., अथर्व० १८.१.५०., १८.३.१३.

२- ऋ० १०.१५.१४.

३- वही १०.१४.८.

४- अन्तर्हितो हि पितृलोको मनुष्यलोकात्।। तै० ब्रा० १.६.८.६.

५- तिर इव वै पितरः।। मा० श० ब्रा० २.६.१.१९-२०. तैत्ति० ब्रा० १.६.१.१३.

६- अथ त्रयो वाव लोका मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति सोऽयम मनुष्य लोकः पुत्रेणैव जय्यो - - - - कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोको।
मा० श० ब्रा० १४.४.३.२४., बृ० उ० १.५.१६.

की गणना की गई है । जो आहुतियाँ अग्नि कुण्ड में डालने पर ऊपर को प्रज्वलित होती हैं उन से देवलोक, जो अति-नाद करती हैं वह मनुष्य लोक तथा जो नीचे की ओर जाती हैं उन से पितर लोक को जीत लेता है । अत: यह पितर लोक नीचे की ओर है[1] । उपनिषदों में वर्णन आया है कि जो आहुतियां ऊपर को प्रज्वलित होती हैं वह देवलोक की प्राप्ति होती क्योंकि देवलोक प्रकाशमान है । इसी कारण देवलोक की प्राप्ति प्रज्वलित आहुतियाँ करके कही गई है जो आहुतियां अति नाद करती हैं उन से पितृलोक की क्योंकि पितर लोग सुख के कारण उन्मत्त हो कर पितृलोक में नाद करते हैं । जो आहुतियां नीचे को जाती है उन से मनुष्य लोक,की प्राप्ति होती है क्योंकि मनुष्य लोक नीचे की ओर है[2] । एक स्थान पर सोम को पितृलोक कहा गया है[3] तथा सोम को पितरों का देवता भी माना गया है[4] । पितर लोग इस सोम रस का पान करके ही देवताओं की तरह शक्ति प्राप्त करते हैं । यम को भी पितृलोक कहा गया है[5] क्योंकि यम के अधीन ही यह पितरों का राज्य है । इस के अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि पितरों का स्थान पृथिवी के अन्दर है । कूप जो खोदा जाता है उस के देवता पितर ही हैं[6] । ओषधियों को भी पितरलोक माना गया है क्योंकि ये पितर इन की जड़ों में छिपे रहते हैं[7] । तैत्तिरीय संहिता

१- मा० श० ब्रा० १४.६.१.१०.

२- बृ० उ० ३.१.८.

३- पितृलोक: सोम: ।। कौ० ब्रा० १६.५.

४- सोमो वै पितृणां देवता । काठक सं० ३६.१३., मै०सं०१.१०.१८., तै० ब्रा० १.६.

५- पितृलोको यम: ।। कौ० ब्रा० १६.८.

६- पितृदेवत्यो वै कूप: खात: तमेवैतन्मेध्यं करोति । मा० श० ब्रा० ३.६.१.१३कु

७- ओषधिलोको वै पितरऽओषधीनाᳬ ह मूलान्युपसर्पन्ति ।।

वही १३.८.१.२०

के अनुसार श्मशान चिति करने से मनुष्य को पितृलोक में प्रवेश मिल जाता है[1]। अथर्ववेद में पिता के घर के लिए भी पितृलोक शब्द प्रयुक्त हुआ है। एक मन्त्र में कहा गया है कि पतिलोक की कामना करती हुई शोभायमान कन्यायें पितृकुल से पतिलोक को जाती हुई उत्तम वाणी द्वारा दीक्षा दें[2]।

द्युलोक में पितृलोक की स्थिति

ऋग्वेद में मृतात्मा को लक्ष्य करके उन मार्गों के द्वारा जाने को कहा है जहां से पहले पितर गए हैं, वहां स्वधा से आनन्दित हुए दोनों राजा यम और वरुण के दर्शन होते हैं[3]। उस उत्कृष्ट व्योम में पितरों से तथा यम से अपने उपार्जित कर्मों के द्वारा मिलने के लिए तथा पाप को त्याग कर सुकर्मों से पुनः इस लोक में आने के लिए कहा गया है[4]। अतएव पितरों का वह लोक उच्चतम द्युलोक में है। जहां कि राजा यम शासन करते हैं। वहां जाने के मार्ग को सर्वप्रथम यम ने ही ढूंढा था[5]। इसी मार्ग का अनुसरण करके पितर उस लोक में गए। इस स्थान पर वही मृतात्मा जाते हैं जो कि पुण्यकर्मा होते हैं, यह पितृलोक द्युलोक में विद्यमान है[6]। इसीलिए अथर्ववेद में द्युलोक में बैठने वाले पितरों को स्वधा दिये जाने का उल्लेख है[7]। यह पितर पृथिवी लोक से चल कर अन्तरिक्ष लोक में आते हैं और वहां से चल कर सब से अन्त में इस द्युलोक में निवास करते हैं[8]। यह पितृलोक यहां से तृतीय लोक ही

१- श्मशानचितं चिन्वीत यः कामयेत पितृलोक ऋध्नुयामिति पितृलोक एवर्ध्नोति ।।
तै० सं० ५.४.११.१.

२- उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः अवदीक्षामसृक्षत स्वाहा ।।
अथर्व० १४.२.५२.

३- ऋ० १०.१४.७., अथर्व० १८.१.५४. (४)- ऋ० १०.१४.८.

५- ऋ० १०.१४.२., अथर्व० १८.१.५०.

६- - - - - -मध्ये दिवः स्वधया मदन्ते ।। ऋ० १०.१५.१४.

७- अथर्व० १८.४.८०.

८- वही १८.४.७८-७९, १८.२.४९.

माना गया है[1] । यह तृतीय लोक द्युलोक ही है । शतपथ ब्राह्मण में पितृलोक की स्थिति दक्षिण में मानी गई है[2] । इसी ब्राह्मण में ऐसा भी कहा गया है कि यह पितृलोक दक्षिण की ओर झुका हुआ है[3] । अतएव स्पष्ट हो जाता है कि पितृलोक दक्षिण दिशा की ओर द्युलोक में स्थित है ।

-0-

१- तृतीये हि लोके पितरः । ता० ब्रा० ६.८.५.
तृतीयो वा इतो लोके पितरः । तै० ब्रा० १.३.१०.५.
तृतीये वा इतः पितृलोकः । जै० ब्रा० १.३४.५.

२- दक्षिणः पितृलोकः । मा० श० ब्रा० १२.७.३.७.

३- दक्षिणाप्रवणो वै पितृलोकः । मा० श० ब्रा० १३.८.१.७.